क्रान्तिकारी बारहठ केसरीसिंह

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

[द्वितीय खण्ड]

संपादक :

डा. देवीलाल पालीवाल

डा. ब्रजमोहन जावलिया

फतहसिंह 'मानव'



राजस्थान साहित्य अकादमी

उदयपुर

□ प्रथम संस्करण : 1986 ई.

□ मूल्य : बत्तीस रुपये मात्र

□ प्रकाशक : राजस्थान साहित्य अकादमी
हिरनमगरी, सेक्टर 4,
उदयपुर-313 001

□ मुद्रक : पालीवाल प्रिन्टर्स
उदयपुर-313 001

Krantikari Barhat Kaisrisingh : Vyaktitva Avam Kratitva. Vol. II
Rs. 32/– Only

Edited by :
Dr. D. L. Paliwal, Dr. B. M. Jawalia, Fateh Singh 'Manav'

क्रान्तिकारी बारहठ केसरीसिंह

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

[द्वितीय खण्ड]

प्रकाशकीय

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर की बहुविध प्रवृत्तियों मे एक विशिष्ट प्रवृत्ति उच्चस्तरीय साहित्य का प्रकाशन है। अकादमी की इसी प्रकाशन योजनान्तर्गत अब "क्रांतिकारी बारहठ केसरीसिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व" का द्वितीय खण्ड भी प्रस्तुत है। साहित्य अकादमी ने कुछ वर्षों पूर्व क्रांतिचेता बारहठ केसरीसिंह के साहित्य-प्रकाशन का संकल्प लिया था और प्रसन्नता है कि वह संकल्प पूर्ण हो रहा है।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम मे अनेक त्यागी, तपस्वी, निष्ठावान देश भक्तों ने भाग लिया और क्रांति का शंख फूंका। ऐसे महापुरुषों मे ठाकुर केसरीसिंह बारहठ भी हैं। स्व. बारहठजी की जीवन गाथा एक स्वतन्त्रता सेनानी के संघर्ष की जीवन्त कहानी है। आपका जन्म 21 नवम्बर 1872 ई में तत्कालीन राजपूताना की शाहपुरा रियासत के देवपुरा गाव मे हुआ था। प्रारम्भ मे वे धर्म सुधार, जाति सुधार, समाज सुधार और शिक्षा सुधार की ओर प्रवृत्त हुए परन्तु इस अभियान में उन्हें आशानुकूल परिणाम प्राप्त नही हुए। इसी समय उनका सम्पर्क श्री अर्जुनलाल सेठी, तथा राव श्री गोपालसिंह खरवा से हुआ और रासबिहारी बोस व शचीन्द्रनाथ सान्याल के क्रांतिकारी दल "अभिनव भारत" से उनका सम्बन्ध स्थापित हो गया। देशभक्त केसरीसिंहजी सशस्त्र क्रांति के विचारों के प्रचार-प्रसार मे लग गए। उनके आदर्श चरित्र व दृढ़ विचारो के परिणाम स्वरूप उनका सम्पूर्ण परिवार देश भक्ति के रंग मे रंग गया। ठाकुर केसरीसिंहजी को अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह फैलाने के आरोप मे गिरफ्तार कर तथा बीस वर्ष के आजीवन कारावास की सजा सुना कर राजस्थान से दूर हजारीबाग कारागृह में भेज दिया गया। परिवार की सम्पत्ति कुर्क कर ली गई। पुत्र क्रांतिवीर प्रतापसिंह की भी गिरफ्तारी हो गई जिन्होंने बाद में जेल में राष्ट्र के लिए प्राण न्यौछावर कर दिये।

ठाकुर केसरीसिंहजी स्वाभिमान की प्रतिमूर्ति, सादा जीवन व उच्च विचारों के प्रेरक, राष्ट्राभिमानी व शौर्य देशभक्त थे। वे बहु भाषाविद् और अनेक विषयों के प्रकाण्ड पंडित थे। हिन्दी, राजस्थानी, व्रज आदि मे

साहित्यिक रचनाएं हैं। उनका काव्य और विचार उच्च स्तरीय है। उनके लिखे पत्र, कविताएं, रचनाएं व लेख आदि हमारे लिए बहुमूल्य धरोहर हैं। उदयपुर के तत्कालीन महाराणा को लिखे गये तेरह सौरठे 'चेतावणी रा चूंगट्या' चर्चित व सुप्रसिद्ध है। आजादी की अलख जगाने वालों में केसरीसिंहजी का नाम अग्रणी रहेगा। उनका निधन 14 अगस्त 1941 ई. को अस्वस्थता से हुआ।

'ठाकुर केसरीसिंह बारहठ : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' द्वितीय खण्ड के प्रकाशन के लिए राज्य सरकार ने विशेष अनुदान प्रदान किया। अतः हम राज्य सरकार विशेषतः माननीय श्री हरिदेवजी जोशी मुख्यमन्त्री राजस्थान के प्रति कृतज्ञ हैं। अकादमी-अध्यक्ष डॉ. प्रकाशजी आतुर के प्रयासों से ही इस ग्रंथ हेतु विशिष्ट अनुदान प्राप्त हुआ। अध्यक्ष महोदय ने इस ग्रंथ का अन्तिम रूप से अवलोकन विश्लेषण किया तथा उन्हीं की प्रेरणा व मार्गदर्शन से यह कृति निश्चित समय में प्रकाशित हो सकी है।

सम्पादक-त्रय डा. देवीलाल पालीवाल, डा. ब्रजमोहन जावलिया व श्री फतहसिंह 'मानव' को सकलन सम्पादन के लिए हार्दिक धन्यवाद।

विश्वास है सुधिजन इस कृति को पसन्द करेंगे।

मार्च 1986 ई०

डा. लक्ष्मीनारायण नन्दवाना
सचिव
राजस्थान साहित्य अकादमी
उदयपुर

☐ श्रद्धांजलि

☐ परिशिष्ट

☐ हस्तलिपि व चित्र

निवेदन

उन्नीसवी शती का उत्तरार्द्ध, वस्तुतः राजनीतिक चेतना के विस्तार का समय रहा है। समय के साथ साथ अंग्रेजो के पांव इस देश मे दृढता के साथ जमते गये लेकिन साथ ही उतनी ही संकल्प शक्ति के साथ राष्ट्रीयता की भावना भी जड़ पकड़ती गई। राजस्थान की देशी रियासतों में इस नई चेतना के अभ्युदय में धार्मिक पुनर्जागरण का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, साधु निश्लदास, सन्यासी आत्माराम, स्वामी गोविन्द गिरि प्रभृति सन्तो ने धार्मिक एवं सामाजिक सुधार की दिशा में बड़ा योग दिया। सन् 1862 ई. से 1882 ई. तक स्वामी दयानन्द ने अजमेर, भरतपुर, बनेड़ा, चित्तौड़गढ, धोलपुर, करौली, जयपुर, जोधपुर, मसूदा, रायपुर, और उदयपुर की यात्रा कर अपने उपदेशों से धार्मिक संकीर्णता से मुक्त होने का मार्ग दिखाया। 'सत्यार्थ प्रकाश' का द्वितीय खण्ड तो उन्होने उदयपुर मे ही लिख कर समाप्त किया था। उन्होने ही सर्वप्रथम 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया जो बाद मे राष्ट्रीय आन्दोलन की आधारशिला बना। विवेकानन्द ने राजस्थान की तरुण पीढी को बड़ी गहराई तक प्रभावित किया। स्वामी गोविन्द गिरि ने सिरोही, डूंगरपुर और बांसवाड़ा के आदिवासी क्षेत्रो मे, साधु निश्लदास और आत्माराम ने हाड़ोती क्षेत्र में जो धर्म-सुधार का आन्दोलन चलाया उसका भी व्यापक प्रभाव पड़ा। राजस्थान की अंतश्चेतना को प्रबुद्ध करने मे इन साधु-संतों और समाज सुधारको का बड़ा योगदान रहा और परवर्ती युग में, राजनीतिक जागरण की बेला में, इनके प्रेरक उपदेशों ने बड़ी सहायता की।

राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने, अधिकारों की लड़ाई का समर्थन करने तथा स्वतन्त्रता की भावना को बलवती प्रेरणा देने में राजस्थान के कवियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राजस्थान की काव्य परम्परा को समझने के लिए जन आन्दोलन की पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है क्योकि स्वतन्त्रता की पृष्ठभूमि में ही यहां काव्य-सृजन व विकास सम्भव हो रहा है। इन कवियो के काव्य में चाहे ऊंची कलात्मकता के दर्शन न होते हों पर यह सत्य है कि उन्होने

सामन्ती शोषण से पीड़ित जनता को जगाया और एक नई दृष्टि दी। इसी जन आन्दोलन ने जागृति का नया विहान दिया। इन जन कवियों ने जन साधारण के मन में अपूर्व साहस तथा आत्मबल का संचार किया। विजयसिंह पथिक, केसरीसिंह बारहठ, जयनारायण व्यास, हरिभाऊ उपाध्याय, माणिक्यलाल वर्मा, गणेशीलाल उस्ताद, गोकुलभाई भट्ट, हीरालाल शास्त्री, काला बादल, सुमनेश जोशी प्रभृति अनेक कवि-कार्यकर्ताओं ने जनता को नेतृत्व देने के साथ साथ जनमन को उत्तेजित कर जूझने रहने की बलवती प्रेरणा दी और सशक्त जन-काव्य का सृजन किया। इन कवियों की वाणी ने तत्कालीन परिवेश में ज्योति-स्तम्भ का काम किया और राजस्थान के कोटि-कोटि जन की पीड़ा एवं आक्रोश को मुखरित कर, जुल्मी के सिंहासन को जबर्दस्त चुनौती दी।

केसरीसिंह बारहठ शाहपुरा के निवासी थे। उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह ने इनकी कविता पर मुग्ध होकर जागीर में कई ग्राम दिये थे। बाद में कोटा चले आये। केसरीसिंह की शिक्षा संस्कृत तथा हिन्दी में हुई। इसके अतिरिक्त इन्हें काव्य, साहित्य, ज्योतिष, न्याय, वेदान्त आदि का भी ज्ञान था। आपने अपने पिता तथा महामहोपाध्याय श्यामलदास से शिक्षा प्राप्त की।

केसरीसिंह का क्रांतिकारियों से निकट का सम्बन्ध रहा। हार्डिंग्ज बम कांड से संबधित जोरावरसिंह बारहठ इनके अनुज थे और शचीन्द्र सान्याल के साथी तथा मृत्यु दण्ड भोगने वाले प्रतापसिंह इनके पुत्र थे। इन्हें अनेक बार बंदी बनाया गया और यातनाएं दी गईं। वे जीवन के प्रारम्भ में विप्लववादियों के प्रबल समर्थक, समर्थ मार्गदर्शक और नेता थे। उनकी योजना थी कि तत्कालीन राजपूताना के राजघरानों को स्वतन्त्रता के प्रति प्रेरित कर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का वातावरण बनाया जाय। उन्हे काव्य सृजन का अवकाश बहुत कम मिला लेकिन देश-गौरव, आत्माभिमान और परम्पराओं के प्रति सम्मान के भाव, उनके अनेक छंदों में व्यक्त हुए हैं। उन्होंने विविध विषयों पर लेखनी चलाई, लेकिन मूल स्वर राष्ट्रीयता का ही रहा। उनके 'चेतावनी रा चूंग्ट्या' तो ऐतिहासिक ख्याति अर्जित कर चुके हैं।

राजस्थान साहित्य अकादमी ने क्रांतिकारी स्व. केसरीसिंह बारहठ के सम्पूर्ण साहित्य के प्रकाशन का निर्णय वर्षों पूर्व किया था। विद्वान संपादकों ने इसकी सामग्री का संकलन एवं संपादन में पर्याप्त श्रम किया है। जब मैंने अकादमी के अध्यक्ष पद का दायित्व सम्हाला तब मुझे बताया गया कि 'क्रांतिकारी बारहठ केसरीसिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' शीर्षक ग्रंथ अभी तक प्रकाशन की प्रतीक्षा में है। संपादित सम्पूर्ण ग्रंथ को यदि एक साथ प्रकाशित किया जाता तो उस पर कम से कम एक लाख रुपया व्यय होता जो अकादमी

की आर्थिक क्षमता के बाहर की बात थी। ऐसी स्थिति में अकादमी की संचालिका सभा ने निर्णय दिया कि सम्पादित ग्रंथ की अधिकृत व्यक्ति से समीक्षा करवा ली जाय और यदि उचित समझा जाय तो अनावश्यक अंश हटा दिया जाय। डा. पद्मजाजी ने समीक्षा के दायित्व को लिया और अंत मे यह निर्णय किया गया कि पूरे ग्रंथ को एक साथ छापना सम्भव नहीं है अतः इसे दो खण्डों मे प्रकाशित किया जाय। प्रथम खण्ड में केसरीसिंह बारहठ कृत काव्य, उनके द्वारा लिखे गये महत्वपूर्ण पत्र, उनको लिखे गये महत्वपूर्ण पत्र तथा उनके द्वारा लिखित कविराजा श्यामलदास की जीवनी को सम्मिलित किया गया।

राजस्थान सरकार ने इस ग्रंथ के प्रकाशन के लिए विशेष अनुदान प्रदान किया, जिसके लिये अकादमी राज्य सरकार के प्रति कृतज्ञ है।

प्रकाश आतुर

होलिका '86

अध्यक्ष

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर





राजनीतिक विचार

जन प्रतिनिधियों की आवाज़ का महत्व[1]

राजपूताने के बाहर और अन्दर की वर्तमान सार्वजनिक परिस्थिति ने मुझे यह दृढ़ विश्वास दिला दिया है कि प्रत्येक देशी राज्य के लिये अपनी प्रचलित शासन शैली में समयानुकूल और उचित संशोधन करने का समय आ चुका है, इतना ही नहीं बल्कि इस समय का लाभ न लिया गया तो आगे जाकर नरेशों के लिए एक पश्चातापमय स्मृति रह जायेगी। अतः जो उनका हितैषी है उसे स्पष्ट करना चाहिये कि, जिस प्रजा से राज्य-शासन का नित्य और प्रत्यक्ष सम्बन्ध है वह प्रजा इस शासन से अब अछूत नहीं रहना चाहती, उसकी इस भावना को वर्तमान काल बड़े वेग से आगे धकेल रहा है।

प्रजा के सुख-शांति और मत की सर्वथा अवहेलना करते हुए केवल मौखिक सहानुभूति या दमन-नीति की सफलता की आशा पर स्वेच्छाचार को कुछ दिन अधिक जीवित रखने की चेष्टा करना, जिसकी कल्पना ही दुःखद है– ऐसे आतंरिक कलह को निमन्त्रण देना है।

अपना दोष स्वीकार करना उच्च कोटि का नैतिक बल है, अतः सत्य के लिये मान लेना होगा कि, कोई राज्य ऐसा नहीं है जिसकी वर्तमान शासन शैली में पूर्ण नियम-बद्धता, पूर्ण स्थिरता और लोक-हितैषणा हो। प्रजा केवल पैसा डालने की प्यारी मशीन है और शासन उन पैसों को उठा लेने का यन्त्र। राज्यकोष की आमदनी प्रतिदिन उत्तरोत्तर कैसे बढ़े, यही एक शासन का मूलमंत्र हो रहा है। न्याय और सुख-शांति के महकमे तक भी उक्त मूलमंत्र ही के पोषक अंग हो रहे हैं, इसीलिये वे अपनी वास्तविक उपयोगिता में निस्सार हैं। राज्यों की आर्थिक नीति और स्थिति विकट और विकृत मार्ग पर है। ऐसी एकपक्षीय शासन-शैली के परिणाम से नरेश की इच्छा न होते हुए भी प्रजा का पीडन अनिवार्य ही है।

1–हजारीबाग जेल से रिहा होने के कुछ समय बाद अप्रेल, 1920 में ठा.केसरीसिंह द्वारा राजपूताने के एजेन्ट टू दी गवर्नर जनरल को लिखा गया पत्र।

यह कहना ठीक है कि, यह शैली नहीं है, परन्तु इसका ज्ञान नया है। जब तक गवर्नमेन्ट ने राज्यों की आंतरिक व्यवस्था के निरीक्षण में अपना उत्तरदायित्व समझा तब तक इस शासन के ऊपर एक प्रकार का वनिष्ट नियमन था और साथ ही न्याय और शांति की पक्षपातिनी सरकार स्वहित से भिन्न अच्छे जज का काम देती रही, इसी से इस शासन-शैली की बेहूदगियों से प्रजा का बहुत कुछ बचाव होता रहा। इसीसे इसकी असली भयंकरता प्रजा के सामने उतनी न आ सकी। परन्तु ज्यों ही गवर्नमेन्ट ने निज नीतिवश अपना हस्तक्षेप उठा लिया, पर्दा उठ गया, तब मालूम हुआ कि वास्तव में प्रजा अपने प्रिय राजसिंहासन से बहुत दूर जा पड़ी है और दोनों का रुख दो भिन्न दिशाओं में हो चुका है।

शासन-शैली न पुरानी ही रही न पूर्ण नवीन ही बनी, न वैसी एकाधिपत्य सत्ता ही रही, न पूरी ब्यूरोक्रेसी ही बनी, न सर्वथा अनियमित रही न कानूनी (नियमबद्ध) ही बनी। जागीरदार लोग राज्य को अपना भक्षक जानकर मन ही मन झुलस रहे है। साधारण प्रजा जागीरदारों एव राज्य दोनों ही को प्रत्यक्ष ही अपना रक्त निचोड़ने वाले अनुभव करके स्वय आत्मरक्षा स्वतन्त्ररूप से करने की खटपट मे पड़ रही है। न वह सनातन राजभक्ति है, न वह विश्वास ही, सर्वत्र अविश्वास, स्वार्थ और हिंसावृत्ति का राज्य है, जो लोग ऊपर ऊपर से शान्ति का दृश्य दिखलाने की चेष्टा कर रहे है और उसमे अपने आपको सफल मान रहे है, वे स्वयं धोखे मे है। अग्नि को चादर से ढकना भ्रम है, खेल है या छल है। मेरी आत्मा यही साक्षी देती है– ईश्वर यदि उसे असत्य सिद्ध करे तो मैं परम सुखी होऊंगा। परन्तु अभी तक तो अनुभव से यही साक्षी मिलती है कि देशी राज्यों की प्रजा-अशिक्षित रखी हुई-प्रजा केवल पशुबल को ही समझने वाली-प्रजा दरिद्र होते हुए भी निर्दयता से निचोड़ी जाती हुई प्रजा, असहाय प्रजा, धीरे-धीरे अपना सयम खो रही है। जो कोई भी उसके उद्गार के नाम से क्रान्ति का तख्ता उसके सामने रख देता है, उसी पर पैर रख देने के लिये तैयार हो जाती है। उसे लवलेश अनुभव नहीं, वह नहीं जान सकती कि कही उस नये तख्ते के नीचे इतना भयंकर खड्डा छिपा हुआ हो कि तख्ता उलटते ही उसे हजारों हाथ नीचे ले जावेगा। जब शासन ही अनियंत्रित हो तो अबोध प्रजा में नियमानुकूल कार्य करने की भावना हो ही कैसे सकती है? ऐसी दशा मे व्यर्थ सतायी जाती हुई प्रजा मे स्वेच्छाचारिता की उद्दण्ड भावना जाग उठे तो कोई आश्चर्य नहीं। इसके साथ ही इस विकट परिस्थिति का लाभ उठाने के लिये उस अबोध और अनुभव रहित

प्रजा के साथ खेलने के लिये अनेक अनुत्तरदायी व्यक्तियों को कूद पड़ने का प्रलोभन हो जाये तो भी आश्चर्य नहीं। इस सबका परिणाम क्या होगा? समझ में नहीं आता कि जहां अशान्ति, अविश्वास और अव्यवस्था दबी हुई ज्वालामुखी के समान गड़गड़ा रही हो, उन राज्यों में केवल एक राजा और उसके मुट्ठी भर वेतनभोगी सलाहकारों के आधार पर सरकार अपनी मैत्री का भार रखकर कैसे निश्चित हो सकती है।

मुझे विश्वास है कि मैंने अपने प्रत्यक्ष अनुभव के अनुसार जो देश की सच्ची दशा बहुत ही संक्षेप में लिखी है वह आपसे छिपी नहीं होगी क्योंकि आप इस प्रान्त के सर्वोच्च अधिकारी हैं। परन्तु मैं देखता हूं कि इस रोग का असली इलाज अभी तक प्रारम्भ नहीं हुआ। वास्तव में, मैं उसी को इलाज मानता हूं *कि जिसमें नरेशों की प्रतिष्ठा और सत्ता बनी रहे, जागीरदारों को विश्वास* हो जाये कि ऊपर से राजा और नीचे से प्रजा इन दो पहियों के प्रबल चक्र के बीच में रहते हुए भी उनके अस्तित्व और उचित अधिकारों का नाश नहीं होगा, प्रजा को निश्चय हो जाये कि हमारी सुख-शान्ति अटल रहेगी, न्याय का द्वार सबके लिये समान खुला रहेगा, मनुष्य-मात्र के लिये जो अधिकार आवश्यक हैं वे हम से नहीं छीने जावेंगे, हमारे साथ पशुवत् व्यवहार न होगा, हम अपनी कमाई का और राज्य में सौंपी हुई अपनी थाती-पूंजी का उपयोग ठीक-ठीक कर सकेंगे, सरकार को विश्वास हो जाये कि राज्यों में केवल राजा ही नहीं परन्तु वहां की प्रजा भी हमारी मैत्री की कदर करती है और सच्चे दिल से राजभक्त है।

मैं इस इलाज की पहली और प्रधान दवा समझता हूं-'सहयोग'-राजा, जागीरदार और प्रजा का पारस्परिक स्नेह और विश्वासपूर्वक व्यावहारिक और प्रत्यक्ष सहयोग-संवद्ध समष्टि रूप राज्य का गवर्नमेंट के साथ सहयोगपूर्वक मैत्री पालन, बस।

परन्तु यह तब ही हो सकता है जबकि प्रजा के साथ सहयोग करने की आवश्यकता को सरकार और नरेश स्वीकार करें। स्वीकार का अर्थ है-स्थाई नीति की घोषणा द्वारा शासन में उचित परिवर्तन करना, परिवर्तन में प्रजा के प्रतिनिधियों की आवाज को स्थान देना, शासन की और राजा की अनुचित स्वेच्छाचारिता को रोकना।

राज्यों के सच और ठोस हित के लिये एक सरकार की व्यवहारिक पुष्टि के लिये प्रजा में सुलगती हुई भयकर लाय को समय पर बुझाने के लिये

मैं उपरोक्त स्वीकृति को केवल उचित ही नही बल्कि परमावश्यक समझता हूं।

माननीय! मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं राजपूताना के राजा और प्रजा में पारस्परिक विश्वास, शान्ति, सुख और प्रेम देखने के लिये किसी से कम आतुर नही हूं। अतः प्रत्येक सच्चे देश-भक्त और राज-भक्त के लिये उपरोक्त पवित्र लक्ष्य को जल्दी से जल्दी कार्य में परिणत करने का प्रधान कर्त्तव्य समझता हूं। आशा है, इस शुभ कार्य में अनेक योग्य व्यक्ति अपनी पूरी शक्ति लगाने के लिये भी तैयार हो जायेंगे। स्वाधिकार की काल्पनिक उड़ान में अनुभवहीन प्रजा भी गुमराह होने से बच जायेगी और राज्यों की बुनियाद भी अधिक दृढ़ हो जायेगी।

मेरे उक्त अनुभव और विश्वास के साथ यदि आप महानुभाव सहमत हो सकते हो तो आपकी सहानुभूति जान लेने के बाद ही मैं पेश कर सकूंगा कि कार्य का प्रारम्भ किस तरह से होना उचित होगा। केवल दिग्दर्शन के तौर पर मोटे रूप में एक स्कीम इसके साथ भेज देता हूं, परन्तु इस पर उठने वाले विशेष मुद्दों पर यथावत् अपना विचार मैं तभी सामने रख सकता हूं जबकि आपसे पुष्टि पाकर नरेशगण इस पर कुछ ध्यान देने को तैयार हों।

ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह सबको सद्बुद्धि दे। मैंने अपना कर्त्तव्य किया है। अतः यदि आप मेरे विचारों को तुच्छ और उपेक्षा की दृष्टि से देखेंगे तो भी मुझे खेद नही होगा। इस बार मैंने यही उचित समझा कि मैं अपने विचार अपनी भाषा में ही प्रकट करूं। अंग्रेजी न जानने के कारण पहले भी जब-जब मैंने आपकी सेवा में अपने विचार अंग्रेजी में दूसरों से लिखा भेजा, तब-तब मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरे विचार ठीक रूप से आपके सामने नही रखे जा सके और ऐसी दशा में गलतफहमी रह जाना स्वाभाविक है। अतः हिन्दी में लिखने के साहस पर क्षमा करें।

अन्त में, एक बात और निवेदन करूंगा। मैं लीडरशिप के भूत से बहुत दूर भागता हूं क्योंकि मैं अपने में उतना गुण नहीं पाता। लीडर होना जितना सुगम हो गया है मैं उतना ही कांपता हूं। जो कुछ प्रार्थना की गई है उसका अर्थ यह कदापि नही है कि मैं आगे बढ़ना चाहता हूं। अपने अन्तःकरण में मैंने जो कुछ अच्छा पाया, वह निर्भय और निःस्वार्थ से कह दिया। यदि आप स्वयं इस कार्य को हाथ में लें अथवा किसी दूसरे योग्य व्यक्ति के

हाथ में सौंपेंगे तो मैं बहुत ही प्रसन्न होऊंगा और अपनी ओर से किसी भी प्रकार के बदले की आशा छोड़कर अपनी शक्ति और सेवा का समर्पण कर दूंगा। मैं नाम नहीं चाहता। केवल इसी लक्ष्य से कि मैं सरकार और नरेशों की सहानुभूति से उनकी गरीब प्रजा की सच्ची सेवा कर सकूं, आज तक किसी राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने से दूर रहा हूं। परन्तु मेरे हृदय को न जानकर केवल मेरे नाम से राजगण व्यर्थ ही चौंकते हैं, इसी से अपने विचार उनके सामने न रखकर आपके सामने रखने का साहस कर रहा हूं, क्योंकि आप ही पर इन राज्यों के हिताहित का भार है। किमधिकम्।



सूत्र-रूप स्कीम

राजस्थान-महासभा

(1) भू-स्वामी प्रतिनिधि मण्डल	(2) सार्वजनिक प्रतिनिधि परिषद्
1- बड़े-छोटे उमराव	1- श्रमजीवी
2- जागीरदार	2- कृषक
3- माफीदार	3- व्यापारी

उद्देश्य

1- राजा और प्रजा में पारस्परिक सहयोग, प्रेम और शान्ति की स्थापना और रक्षा करना।

2- राजस्थान अर्थात् भारत के देशी राज्यों में प्रजा के प्रति उत्तर-दायी शासन-पद्धति की स्थापना करवाना।

3- नरेश, भू-स्वामी और सर्वसाधारण जनता के न्यायतः प्राप्य और प्राप्त अधिकारों की प्राप्ति और रक्षा करना अर्थात् सरकार-हिन्द के मुकाबले में नरेशों के, नरेशों के मुकाबले में भू-स्वामी के एवं प्रजा के और भू-स्वामियों के मुकाबले में सर्व-साधारण जनता के अधिकारों की रक्षा के लिये धर्म, न्याय और सत्य के आधार पर सब प्रकार के विधिवत् उपायों द्वारा निर्बल पक्ष की सहायता करते हुए राज्य के प्रत्येक अंग में शांति और सुख की वृद्धि करना।

4- राज्यों में धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक मानसिक, शारीरिक एवं लोक हितकारी शक्तियों के विकास के लिये सर्वांगीण चेष्टा करना।

देशी-राज्यों का भविष्य
प्रश्नोत्तर[1]

प्रश्न— भारत की वर्तमान लहर सफल होने से अर्थात् भारत स्वतन्त्र होने पर देशी राज्यों की क्या दशा होगी ?

उत्तर— देशी राज्य भी तो भारत के ही अंग हैं अतः जो स्थिति भारत की होगी, वही देशी राज्यों की प्रजा की भी होगी।

प्रश्न— भारत में प्रजातन्त्र राज्य हो जाने पर देशी नरेशों का क्या होगा ?

उत्तर— देशी नरेशों के भाग्य का फैसला उनके निज के आचरणों के आधार पर है। यदि ये देशकाल के अनुसार अपनी प्रजा को प्रगति की ओर ले जाने में नेता बनकर स्वार्थ त्याग करके प्रजा का प्रेम और विश्वास प्राप्त कर लेंगे तो प्रजा उनको कभी नहीं छोड़ेगी और यदि स्वार्थवश विदेशी नौकरशाही का अनुसरण कर प्रजा को दबाने में शक्ति लगायेंगे तो जो दशा नौकरशाही की होगी वही उनके लिये अनिवार्य है।

प्रश्न— ब्रिटिश भारत की जनता डेढ़ सौ वर्ष से नौकरशाही को सदा सामने देखती है राजा को नहीं। अतः उनमें प्रजा-भक्ति का लेश नाममात्र को शेष है परन्तु देशी राज्यों की प्रजा के सामने उनका राजा प्रत्यक्ष होने से राजभक्ति की भावना उनको भारत के साथ चलने में रोकेगी ?

उत्तर— राज-भक्ति का आधार राजा के दूर या सामने रहने पर नहीं रहता बल्कि न्याय और सत्य-निष्ठा पर रहता है। फ्रांस, चीन, रूस आदि की क्रांतियां इसकी प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

1-हजारीबाग जेल से छूटने के थोड़े समय बाद ही प्रथम असहयोग आन्दोलन (1920-21) के समय ठा. केसरीसिंह द्वारा देशी राज्यों के भविष्य के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये विचार।

प्रश्न— देशी राज्यों में शिक्षा कम होने से जाग्रति की समता न रहकर देश के उत्थान में बाधा आ सकती है ?

उत्तर— प्राय: सभी देशों में ऐसा ही हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित नहीं होता, आन्दोलन की व्यापकता ही मनुष्य पैदा करती है केवल शिक्षा से कुछ नहीं होता। शिक्षित होकर भी मनुष्य आजीवन दास रह सकता है। सामान्य सुख अधिकारों का ज्ञान प्रत्येक को किसी न किसी रूप में अवश्य रहता है। उनकी पहचान पड़ने पर साधारण जनता भी शान्त नहीं रहती। अत: देशी राज्यों में जाग्रति अनिवार्य है। भेद इतना ही है कि शिक्षितों की जाग्रति क्रांति के काल को अनिवार्य होने तक धीरे-धीरे लाती है और अशिक्षितों में जाग्रति होने के बाद ही क्रांति फूट निकलती है क्योंकि दमन को शान्ति के साथ संयमपूर्वक सहन करने की शक्ति उनमें नहीं रहती। इसीलिये देशी राज्यों में दमन नीति अति भयंकर सिद्ध होगी (कोई नीतिज्ञ नरेश दमन नीति स्वीकार करके अपनी सत्ता का नाश आप करने के लिये उतारू नहीं होगा) जाग्रति का नाश तो कभी होता ही नहीं। उसका क्षण भर दब जाना भी भविष्य की भयंकरता को संचित करता है।

प्रश्न— कौन नरेश प्रजा की प्रगति और जनता के सहयोग को स्वीकार करता है और कौन नहीं, इसकी क्या परीक्षा है और जहाँ सन्निष्ठा पूर्ण सहयोग को ठुकराया जाय, वहाँ क्या करें ?

उत्तर— बहुत सहज है, देशी राज्यों की प्रजा में से ही वे कर्मवीर, पूर्ण त्यागी, देश-भक्त कर्म-क्षेत्र में उतरें जिनको यह दृढ़ विश्वास हो कि राज्यों की प्रजा को स्वावलम्बी एवं अन्योन्य सहयोगी बनाने में ही राजा प्रजा का कल्याण है। संगठन में ही देश का जीवन है। सुव्यवस्था, स्वाधिकार और स्वातन्त्र्यपूर्ण शान्ति में ही मानव समाज का अभ्युदय है। उनके वैध और अहिंसात्मक लोक हितैषणा कार्य शुरू होते ही प्रत्येक नरेश की सहानुभूति या स्वेच्छाचारिता प्रगट में आ जायेगी। जहाँ स्वेच्छाचारिता उबल पड़े, वहीं देश-भक्तों की पवित्र बलिवेदी होगी। वही कर्मवीरों का प्रधान कर्मक्षेत्र होगा, वहीं प्रजा में जीवन-मन्त्र फूंकने का यज्ञ-मण्डप होगा।

प्रश्न— राज्यों की प्रजा को इस समय कौन-कौन से अधिकार प्राप्त होने चाहिये ? किस-किस प्रकार के अन्याय होते हैं, जो जनता को दु:ख

और अयोग्यता की ओर खींचते हैं, जिनका सुधार करना प्रथम आवश्यक है ?

उत्तर— सब राज्यों की न एक सी दशा है न एक सी व्यवस्था, बल्कि प्रत्येक राज्य में भी किसी एक व्यवस्था का स्थायित्व नहीं और न्याय-अन्याय व्यवस्था ही का परिणाम है। अतः राजस्थान की सुख, शान्ति और समृद्धि के लिये कार्य करने वाले कर्मवीर ही इन सब बातों की तालिका बनावें और उन्हीं पर सुधारों एवं अधिकारों की पूर्वापरता स्थिर की जाय।

प्रश्न— देशी राज्यों की प्रजा को व ब्रिटिश भारत को राष्ट्रीय कांग्रेस से सम्बन्ध जोड़ना चाहिये या नहीं ?

उत्तर— हां, अवश्य जोड़ना चाहिये क्योंकि नरेशों को अपने प्रभाव में रखने के लिये प्रजा के हाथ में जो स्वाभाविक एवं सनातन अधिकार थे वे अधिकार अहदनामों से सरकार हिन्द ने अपने हाथ में ले लिये। अतः राजाओं का भय और स्वार्थ प्रजा से छूटकर सरकार के साथ हो गया। अब सरकार ने स्पष्ट रूप से राजाओं के शासन सम्बन्ध में हस्तक्षेप न करने की नीति प्रगट करके नरेशों की स्वेच्छाचारिता स्वीकार करके प्रजा को दी हुई अभयता में विश्वासघात किया। ऐसी दशा में प्रजा के लिये कोई न कोई समर्थ आश्रय की आवश्यकता है। भारतीय जन-शक्ति के अतिरिक्त भारत में और कोई समर्थ नहीं। अतः उससे सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक नहीं।

"समान दुःखानुभवेषु सख्यं"

प्रश्न— तो क्या कांग्रेस के प्रत्येक मंतव्य को अविकल स्वीकार करना चाहिये ?

उत्तर— नहीं। ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों की प्रजा-आवश्यकता, परिस्थिति और हेतुओं में भिन्नता है। अतः उसके प्रत्येक मंतव्य हमसे स्वतः प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रखते।

शिकार का कानून और देशी राज्य[1]

नरेन्द्रगण!

जबकि आप वर्तमान देशकालानुसार एक और आधीन प्रजा और दूसरी ओर निरंकुश ऊपरी सत्ता के मध्यवर्ती कठिन संयोगों में आये हुए हैं और इसी से उनके प्रत्येक संचलन को न्याय और बारीक दृष्टि से देखते हुए विशेष अंश में जाग्रत रहना सीखे हैं तो आशा है गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया के प्रस्ताव चक्र में और "पायोनियर" आदि समाचार पत्रों की लेखनी में चढ़े हुए "गेम-लॉ फार इण्डिया" अर्थात् "हिन्दुस्तान के लिये शिकार का कानून" को ध्यान-पूर्वक प्रत्यक्ष वा परोक्ष मे देखा या सुना होगा।

राजेन्द्र वृंद!

यद्यपि हमारे देशी राज्य प्रकट में ब्रिटिश कानून की सत्ता से बाहिर हैं और वह दोनों ओर से मान्य भी हैं। इसी से ब्रिटिश प्रजा के लिये जो कानून बने या चाहे जावें उन पर विवेचन करना देशी राजा व उनकी प्रजा के लिये निरुपयोगी मान लिया जाना सम्भव है। परन्तु विशेष दृष्टि से देखने वाले को मानना ही पड़ता है कि देशी राज्यों के विशेष भागों में वे कानून प्रत्यक्ष वा परोक्ष रीति से, शुद्ध व छाया रूप से, शीघ्र वा विलम्ब से, प्रविष्ठ होते ही है। उनमें भी प्राय: ऐसे कि जिनके परिणाम में कैसे ही कुछ आमदनी की वृद्धि, मौज-शोख की झलक हो। इन्ही घटनाओं से यदि देशी राज्यो के शुभचिन्तको का ध्यान "गेम-लॉ" के ग्राह्य- ग्राह्य विषय पर जावे और विवेचन करावे तो असंगत नही होगा, क्योंकि यह एक उस शिकार का सम्बन्ध है कि जो हमारे

1–ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के लिये **Game Law For India** शिकार का नया कानून बनाने के लिये 1909-10 के आसपास में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक बिल प्रकाशित किया गया। इस कानून के देशी राज्यो में भी लागू होने की संभावना को दृष्टिगत रखते हुए केसरीसिंह ने देशी नरेशों को सम्बोधित करते हुए यह आलेख लिखा था। एवं 'पायोनियर' को इस सम्बन्ध मे विस्तृत पत्र भी दिया था।

वर्तमान राजाओं के जो बड़े भाग को अथवा सब ही को वारिसों में मिली हुई हृदयग्राही, प्रिय और परमानन्द-जनक सामग्री में एक मुख्य है। उसकी कानूनन सुरक्षितता और विशेषता से उससे होने वाली आमदनी की आशा शायद उनको ललचा सकती है।

इस बिल के विषय में चारों ओर से आक्षेप हो रहे हैं। उनमें अच्छी तरह से सिद्ध किया जा रहा है कि इससे यदि लाभ है तो इतना ही मात्र कि हिन्दुस्तान के विशाल क्षेत्र की शिकार एकमात्र सरकारी बड़े अफसरों के हाथ में जा पड़े और इस आनन्द के भोक्ता वे ही मात्र रहें। हानि पक्ष में किसानों पर घोर आपत्ति, गरीब वर्ग को इस लाभ से वंचित रखना, लाइसेंस के झगड़े आदि अनेक बातें प्रकट की गई हैं। अतः हम उन सब बातों को उन्हीं के लिये छोड़कर केवल उन्ही बातों को दिखावेंगे जो हमारे देशी राज्यों के लिये हिता-हित हों।

हमको प्रथम दो बात पर विचार करना है अर्थात्-(1) इस बिल को शुद्ध व छाया रूप से अंगीकार करने की हमें आवश्यकता है या नहीं ?

(2) अंगीकार में क्या-क्या हानियाँ होना सम्भव है।

(1) अंगीकार के दो कारण होते हैं। एक तो अपना स्वयं स्वार्थ और द्वितीय ऊपरी सत्ता की आज्ञा। प्रथमतः हम देखते हैं कि यदि इस बिल का हार्दिक प्रयोजन केवल शिकार के सुभीते और सफलता के लिये जंगली जानवरों की और पक्षियों की रक्षा से है तो हम दावे से कह सकते हैं कि इस मंशा की वास्तविक पूर्णता जैसी कि हमारे देशी राज्यों में पहले ही से पूर्ण दक्षता से कायम किये हुए प्रबन्धों से हो रही है, उससे अच्छी व निर्दोष सिद्धि अन्य प्रबन्ध में होना कठिन है अथवा हो नहीं सकती। प्रायः सभी देशी राज्यों में प्रति प्रान्त में शिकार के ऐसे उपयोगी स्थल पहले ही से चुनकर नियत किये गये है कि जहाँ जंगली जानवरों की स्थिति और वृद्धि में सब तरह से स्वाभाविक अनुकूलता है, इतना ही नहीं परन्तु थोड़े प्रबन्ध से पूर्ण सुरक्षित भी रह सकते है और उनसे होने वाले अनर्थों से भी प्रजा बहुत अधिक अंश में बचती है। वे स्थान "रखत" (रक्षित) से पहिचाने जाते हैं। 'रखत' के बाहर शिकार करने की आम इजाजत होने से सर्व साधारण को अपनी शिकार करने की इच्छा पूर्ण करने और किसानों को अपनी खेती का स्वतन्त्रता से रक्षण करने के साथ एक स्वतः लाभ यह होता है कि वे जानवर सदा उसी रखत में रहना पसन्द करते हैं जहाँ कि उनको निर्भयता का विश्वास हो गया है। इसी से जब शिकार की जाती है तब शिकारी उन जानवरों के विशाल राज्यों में अपने मनो-राज्य को साकार रूप में देखने का आनन्द अनुभव लेता है। उन 'रखतों'

का उपयोग बिना उसके सत्तावान महाराजा की आज्ञा के कोई भी करने में असमर्थ है चाहे कैसा ही बड़ा कोई राजा वा सत्ताधारी अंग्रेज भी क्यों न हो, उसे रखत मे शिकार करने के लिये महाराजा की आज्ञा अवश्य लेनी पड़ेगी और आपकी वह आभार-जनक आज्ञा स्नेह-वृद्धि के कारणों में से एक है।

पक्षियों की शिकार के लिये तो कोई राजपूताने का सामान्य अनुभव भी रखता होगा वह भी कह सकता है कि देशी राज्यों की संस्कारी प्रजायें इस छोटी शिकार मे आनन्द के स्थान पाप देखती है। ऐसे शिकारी को "चिड़ी-मार" के हलके नाम से पहिचान कर उसकी पवित्रता और वीरता में सन्देह लाती है। अतः स्वतः रक्षित हैं।

हमारे नृपतिगण को ध्यान देने पर दृढ़ विश्वास होगा कि उनके राज्यों में "गेम-लॉ" या ऐसा ही कोई दूसरा नियम अंगीकार करने या बनाने की लवलेश भी आवश्यकता नही है।

यदि अंगीकार के दूसरे हेतु को विचारा जाये तो यहां हम केवल इतना ही कहेंगे कि चतुर सरकार यदि कारणवश ऐसे विषयो में कदापि कहती भी है तो वो प्रस्ताव को खानगी सूचना के तौर उनके सन्मुख रखकर और उस पर उनको अपने संयोगों के अनुसार निर्णय पर आने की छूट देकर प्रत्यक्ष में अपने न्यायी सत्ता के ढंग की उचित रक्षा करती है। तो हम कैसे कहेंगे और मानलें कि वे उतने ही से वैसा करने को लाचार हैं। यदि वे अपने सच्चे सिद्धान्तों का अकाट्य और शुद्ध दलीलों पर कायम करें और उन सिद्धान्तों को नम्र और सभ्यताभरी, परन्तु गम्भीर और वजनदार भाषा में स्थान दें तो नीति विशारद गवर्नमेन्ट प्रसन्नता के साथ उनसे सहमत होगी।

अब रहा दूसरा विषय कि इस बिल के अंगीकार से क्या-क्या हानियां होना सम्भव है? प्रथम तो इस बिल के दाखिल होते ही ईश्वर की कृपा और गवर्नमेन्ट की उदार नीति के कारण अभी तक बचे हुए देशी राज्यो के शस्त्र कि जिनको इन राज्यों की प्रजा वंश-परम्परा से प्राणों से भी प्रिय समझती आई है और इतनी-सी बची बचाई स्वतंत्रता को ही अपना सर्वस्व समझ रही है, उस शस्त्र स्वतंत्रता पर नाम मात्र ही की परन्तु फिर भी स्वतंत्रता पर, लाईसेन्स का अंकुश रख कर परोक्ष रीति से "आर्म्स-एक्ट" के भयानक मुं की ओर घसीटने का कार्य होगा कि जिसके परिणाम को आत्मघात भी कह सकते हैं। यदि नवयुवक और राज्य संसार के नवीन अतिथि किसी महाराजा को मेरे लेख में कुछ भी अतिशयोक्ति का सन्देह हो तो वे अपने राज्य

को किसी शस्त्रधारी प्रजा के योग्य समुदाय को बुलाकर गम्भीर और विश्वास-जनक मुद्रा से पूछें कि तुमको शस्त्र और प्राण-इन दोनों में से प्रिय कौन है? यदि इसका उत्तर शस्त्र में आवे तब आप विश्वास करें कि मेरा लेख कृत्रिम रंगत का नहीं किन्तु उनकी, उनकी प्रजा की एवं ऊपरी सत्ता की शुभचिन्तकता की गम्भीर शांति सूचक झलक है। शस्त्रधारियों के शस्त्र को काठ खा गया परन्तु उनके मोह को खाने में अभी कुछ विलम्ब है।

द्वितीय, इस बिल के अंगीकार करते ही देशी राज्यों की चिरकाल से सुरक्षित "रखतें" एकदम भ्रष्ट हो जायेंगी इतना ही नहीं किन्तु समय पाकर अनेक आपत्तियों में खुद महाराजाओं को अगत्या फँसना पड़ेगा और यह भूल उनके वंश तक के लिए वास्तव में कभी सांप छछुन्दर भी बनकर सदा के वास्ते हृदय-शल्य बन जावेगी।

जब कोई भी किसी दर्जे का व्यक्ति लाइसेन्स के टके, वे भी भारत के किसी प्रांत में फेंक कर, उन सत्तावान महाराजाओं की स्नेह साधन, गवर्नर जनरल जैसों से भी, आभार सूचक शब्द कहलाने वाली, चिर सुरक्षित, महर्घ और प्रिय रखतों में गोलियों धनु धनावेगा तब क्या उसको सहन करने की शक्ति उनके दिल में होगी? यदि उनको इस बिल का लालच अपनी रखतों को बचाने के लिये यह मार्ग सुझावें कि वे उन्हें अपने स्वाधीन रखकर फिर लाइसेंस दें तो यह भी एक हास्यजनक बात होगी। अर्थात् जब वे अपनी राज्य की उत्तम रखतों को निकाल लेंगे तो फिर वह जगह ही कौन सी रहेगी जहाँ आनन्द-जनक शिकार प्राप्त हो। उस अवस्था में कौन आँख का अंधा और गाठ का पूरा ऐसा होगा कि जो थोथे और बेढंगे जंगलों में रीते धक्के खाने के लिये धन खर्च कर लाइसेंस लेगा। जिसके लिये हमारे प्रदक्ष नरेश ललचावेंगे वह तो पायेंगे नहीं और प्रजा की शस्त्र सत्ता को भी खो बैठेंगे और वही मसल होगी कि "लेने गई पूत, और खो आई खसम।"

समय पाकर उनकी रखतें भी कहाँ तक स्वाधीन रहेंगी यह भी सदिग्ध ही है। वे सोच सकते हैं कि जब बड़े-बड़े अंग्रेज शिकारियों के दल अन्य स्थलों की अपेक्षा देशी राज्यों की शिकार की विशेष सुगम और सस्ती देखकर और "गेम-लॉ" द्वारा साधारण निमन्त्रित होकर महाराजाओं के उन रक्षित स्थलों पर स्वच्छन्द साहसिक हक से आ घेरा घालेंगे और उन खुद को भी सिर झुका कर हाथ में हाथ देना पड़ेगा तब कहिये फिर? उस समय की कल्पना अपने अनुभवी हृदय से खुद नरेश ही क्षण भर के लिये कर सकते हैं।

तीसरे, देशी राज्य में कई एक रंक शिकारी जातियाँ है कि जिनके कुटुम्ब का निर्वाह वंश-परम्परा से ही अधिकांश में शिकार पर होता है। उनका शिकार आनन्दार्थ नहीं, किन्तु कुटुम्ब-पोषणार्थ है, उनकी क्या दशा होगी ? क्या नरेन्द्रगण इस बिल से पशुपालक होकर एक नहीं अनेक मानव कुटुम्बों पर अन्याय नहीं करेंगे ? यदि मानव भोग देकर के भी पशुओं को ही बचाना है तो फिर एक दूसरों को खाने वाले जीवन-कलह-स्वभाव-धारी क्षुद्र पशुओं ही के लिये क्या सोचा ?

इत्यादि कारणों से हमारे विचारशील राजेगण को विश्वास होगा कि देशी राज्यों में ऐसे बिल के छायापात से ही अनिष्ठ परम्परा होगी। इतना ही नहीं किन्तु थोड़े लालच के लिये स्वदेश गौरव को पूर्वजों के अतुल शौर्य की स्मारक रूप विविध सत्ताओं को, और अन्त में नाम मात्र के लिये भी बची बचाई कुलदेवी स्वतन्त्रता को सदा के लिये तिलांजलि दी जाकर कवि शिरोमणि कालिदास के शब्दों को चरितार्थ करना होगाः—

"अल्पस्यहेतोर्बहुहातु मिच्छन्विचार मूढः प्रतिभासि मे त्वम्"

□□

तब और अब : सार्वजनिक भावना[1]

"अब" (वर्तमान) को तो सब ही जानते हैं, परन्तु सहज जिज्ञासा होती है "तब" कब ? मेरा "तब" से मतलब, न ब्रह्मा या बाबा आदम के जमाने से है, न युगात्मक पौराणिक काल से, न पुरातत्ववेत्ताओं के आदि, मध्य कलात्मक पाषाणी शोध से, मैंने जब से होश सम्हाला, संसार की गति-विधि पर स्वतन्त्र मनन करने की शक्ति प्राप्त की, तब से अर्थात् अब से 50 वर्ष बीते तब से, और यदि बाल्यकाल की धुंधली स्मृतियां भी ले लूं तो 60 साल बीतने को आये, तब से अथवा यों कहूं कि प्रत्येक व्यक्ति अपने वृद्ध आप्तजन की आप बीती घटनाओं और उनके स्वानुभवों से भी अपने अनुभव के समान ही परिचित रहता है और विशेष कर मेरे स्वर्गीय पितृः श्री (बारहठ कृष्णसिंह जी) तो राजपूताने में अपने समय के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ एवं अनेक राजा महाराजाओं के विश्वस्त मन्त्री रह चुके हैं, उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक उलट फेर देखे थे। केवल देखे ही नहीं किन्तु उनमें काम किया, और उनका- लिखा हुआ अपना जीवन चरित्र "बारहट कृष्णसिंह का जीवन चरित्र और राजपूताना का अपूर्व इतिहास" (जो गुप्त रहस्यों के कारण अपूर्व है) के नाम से लिखित ग्रंथ मेरे सामने है। अतः कह सकता हूं कि मेरे अनुभव का क्षितिज भी 90 अंश वाले आकाश के समान नब्बे (90) वर्ष तक पहुंचता है। तब से अब तक जो कुछ देखा है, अनुभव किया और भुक्ता एवं परिस्थितियों में परिवर्तन होते हुए कौनसा दृश्य किस रूप में सामने आ गया, यही संक्षेप में बताना इस लेख का उद्देश्य है। इस संक्षेप में भी अन्तर्देशीय घटनाओं को छोड़ देता हूं क्योंकि अभी अपने घर ही को देखना है। यहाँ मेरा लक्ष्य स्वयं अनुभूति

1- ठाकुर केसरीसिंहजी ने तत्कालीन राज्य व्यवस्था और राजनैतिक स्थिति के सम्बन्ध में "तब और अब" शीर्षक के अन्तर्गत अपने विचारों को विस्तारपूर्वक प्रकट करने की इच्छा से ग्यारह निबन्ध लिखने का निश्चय किया था। किन्तु वे केवल तीन निबन्ध ही लिख पाये– (i) सार्वजनिक-भावना (ii) राजा का व्यक्तित्व और (iii) राजा और ब्रिटिश गवर्नमेन्ट। यह लेख सर्वप्रथम सन् 1938-39 त्रैमासिक "चारण" एवं बाद में गुजराती में अनुवादित होकर अन्य पत्रों में भी प्रकाशित हुए थे।-सं.

पर है। अतः सहज ही मेरे विषय का प्रधान क्षेत्र राजस्थान अर्थात् देशी राज्य हो जाता है। उसमें भी जहां तक हो वैयक्तिक बातों को छूना नहीं चाहता। इस समय मेरा कार्य केवल सामूहिक भावों एव परिस्थितियों के परिवर्तनों को और उनके क्वचित् कारणों को सामने रख देना है। अच्छा हुआ या बुरा, इस पर निर्णय देने की चेष्टा फिर कभी के लिये सुरक्षित है।

विचार है, क्रमशः इन विषयों पर लिखा जाय यथाः-

(1) सार्वजनिक भावना
(2) राजा का व्यक्तित्व
(3) राजा और ब्रिटिश गवर्नमेंट
(4) शासन
(5) राजाओं का पारस्परिक सम्बन्ध
(6) राजा और ब्रिटिश भारत
(7) राजा और सरदार व माफीदार
(8) राजा और प्रजा
(9) सरदार और प्रजा
(10) हिन्दू मुसलमान
(11) राजपूत और चारण जाति

सार्वजनिक भावना

मनुष्य विश्वास का दास है, "यो यच्छ्रद्धः स एव सः" (गीता) जो जैसा विश्वास करता है वह वैसा ही बन जाता है। जो सिद्धान्त व्यक्ति के लिये है वही समाज के लिये है। क्योंकि व्यक्तियों की समष्टि का नाम ही समाज है। जब कोई व्यक्ति या समाज, या देश, परिस्थितियों के वश अपने आपको निर्बल पराधीन और अनधिकारी मान लेता है तो फिर उस दल से दूसरा कोई उसका उद्धार नहीं कर सकता। यदि कदाचित कोई महान शक्ति उसे ऊंचे आसन पर बैठा भी दें तब वह वहां ठहर नहीं सकता। जब कोई प्रतिभाशाली, विभूति सम्पन्न व्यक्ति प्रादुर्भूत होता है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ (गीता)

यह महान् विभूति, शक्ति-क्रांतिकारी के रूपों में कभी कृष्ण, बुद्ध, अरस्तु, प्लेटो, कन्फूसस, ईसा, जरथुस्त्र, मुहम्मद आदि अनेक नामों में और फिर दयानन्द, मेजिनी, तिलक, सुनयातसेन, लेनिन आदि रूपों में आई और महात्मा गांधी के रूप में इस समय भी जिव्हा और लेखनी से मानव जाति के हृदय को हिला रही है।

यह अदम्य शक्ति कहां कब और किन नाम रूपों में आ चुकी और आयेगी कौन गिना सकता है ? "कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी" ऐसा ही असाधारण व्यक्ति, जब देश कालानुसार अग्र-पूजा लेने के योग्य आगे बढ़ता है। रूढ अंधकार को भेदकर नवीन आलोक बताता है तो समाज हिचकते-हिचकते उसका अनुगमन करने लगता है और सफलता की प्रतीतियां उस नेता को आदर्श के आसन पर बैठा देती है। जब वह अपने सिद्धान्त और कार्य को समाज-धारण की सद्बुद्धि से ही सही ईश्वरीय आदेश अथवा प्राकृतिक नियम के नाम से पुष्ट कर देता है, तो वह जनता के लिये राज-पथ बना देता है। फिर जब उसी सिद्धान्त और कार्य के पोषण में वैसे ही या उसी सिद्धान्त के अनुयायियों का समय-समय पर पुनरावर्तन होता रहता है और वे विविध शास्त्र, इतिहास, कथानक आदि से जन भावना को परिपोषित करते रहते हैं, तो समाज उन भावनाओं में रंग जाता है। इतना ही नहीं किन्तु अपनी भावी पीढ़ियों के लिये उस रंग की आनुवंशिक धारा बहा देता है। वह श्रद्धा विश्वास का प्रवाह फिर सहज बदलने का नहीं क्योंकि "गता नु गतिको लोको न: लोक: पारमार्थिक:" भेड़िया धसान ही सामान्य समाज का स्वभाव है। उपरोक्त अटल सिद्धान्त धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रत्येक क्षेत्र में अच्छी या बुरी किसी भी दशा में अपना कार्य करता रहता है। उत्थान और पतन के दो विरुद्ध किनारों का भी एक ही मूल है यह "विश्वास"।

यह सब होते हुए भी प्रकृति संसार का चक्र कभी स्थिर नहीं रहता। यह सत्य है कि वह इतना धीरे अपना कार्य करता है कि उसकी गति सहज में नहीं जानी जाती। विश्वास पर चिपके रहने वाले मानव स्वभाव को भी "वायु-र्नावमिवाम्भसि" जल में स्थित पड़ी हुई नाव को वायु धीरे-धीरे कहीं का कहीं ले जाता है, के अनुसार यद्यपि प्रतीत होता है कि हम अपने स्थान पर ही हैं, परन्तु देश काल की नवीन टक्कर जब सचेत करती है तब भान होता है कि हम कहां थे और कहां आ गये। इसी का नाम है सहज-क्रान्ति। क्रान्ति के बीज अलक्ष्य रूप में सत्य में ही पोषण पाते रहते हैं और विपाक अवस्था में,

तीव्र कर्मानुष्ठान में अवतरित होकर परिणाम के सुख-दुःख में प्रतिफलित होते हैं।

एक वह समय था जब जनता के हृदय में यह दृढ भावना जमी हुई थी कि "नराणां च नराधिपः" राजा ईश्वर ही का रूप है, राजा मार सकता है, तार सकता है, राजा का अधिकार अबाध और असीम है। पृथ्वी राजा की है। इस पर हमारा रहना, इससे कमा खाना और जोना केवल राजा की कृपा से है। राजा के हित मे मर मिटना अपने लिये स्वर्ग का द्वार खोलना है। यदि एकान्त में भी कोई राजा के कर्म पर कटु आलोचना करता तो विद्वान और मूर्ख सब ही को समान रूप से इतना अखरता कि वक्ता को फटकार देने की शक्ति न होती तो स्वयं वहां से उठ जाते। यह भी नहीं कि उस समय राजा के लोभ, व्यभिचार, क्रूरता, कृतघ्नता के दोष प्रजा के सामने न आते हों। किन्तु लोग जानकर भी यही कहते कि राम-राम, अच्छा-अच्छा राजा होकर ऐसा क्यों करते हैं? फिर भी अपवाद छोड़कर विद्रोह भावना तो नहीं ही उठती। यदि कोई किसी को यह कह देता कि ऐसा किया या ऐसा न किया तो तुझे दरबार (यद्यपि दरबार शब्द राजा के सभा भवन का वाचक है परन्तु राजपूताना मे स्वयं राजा को ही दरबार कहने की रूढी है) की आण-शपथ है या दुहाई है, मजाल नहीं कि कोई उस आण का उल्लंघन कर सके। परम्परागत संस्कारों से राजा को महत्ता और राज भक्ति बाल्यकाल ही से लोगों के हृदय मे जड जमाये हुई थी। इसके लिये न किसी स्कूल की आवश्यकता थी न किसी प्रोपेगेन्डा की, जनता में इसी प्रकार की ईश्वरदत्त राज-सत्ता की भावना से एक विचित्र राज शक्ति का शून्य प्रवाह बहा जा रहा था और वही प्रवाह इन राजाओं और राज्यों के अस्तित्व में फौलादी बुनियाद रहा है।

रूढी प्रदत्त इस राज-भक्ति की भावना को एक सामान्य उदाहरण मे जान सकते हैं। प्रायः 60 वर्ष की-मेरे बचपन की बात है। जब जब राजा की सवारी निकलने का दिन होता तो दूर देहातों तक जनता में राज-दर्शन की उत्कट इच्छा लहरा-सी जाती (जैसा कि इस समय महात्मा गांधीजी और राष्ट्रपति के लिये होता है) सवारी के समय प्रत्येक घर खाली होकर राज-पथ ठस जाता। ज्योंही हाथी, घोड़ा या खासा महायान मे सवार होकर राजा सामने से गुजरते तो उस समय आबाल, वृद्ध, नर-नारी के हृदय में अकृत्रिम राज भक्ति का स्रोत उमड़ पड़ता, बच्चों को गोदीमें लेकर जाने वाले अपने प्यारे बच्चों को जमीन पर उतार कर आप जमीन तक झुक कर प्रणाम करते और बच्चों से भी वैसा ही कराते देखा है, भीड़ के कारण राज-पथ तक नहीं पहुंचने वाली

जिसकी दूर गली में खड़ी-खड़ी ड्योढ़ी धूम-धाम देखती, वहीं भक्ति से बलैयां लेती, मालिक की चिरायु के लिए विविध प्रार्थना ईश्वर से करती।

किन्तु समय ने करवट बदली। प्रजा पर अपने वैभव प्रदर्शन से आतंक और आकर्षण स्थापन करने वाली जुलूस की ये सवारियाँ तो आज भी होती हैं। पल्टन, रिसाले, बैण्ड आदि साधन बढ़ कर, चटक मटक भी पहिले से कुछ अधिक ही हुई है, परन्तु वह बात नहीं। लोग अब भी देखने को जाते हैं किन्तु कौतूहल उसी ढंग का है जो एक तमाशा देखने में होता है। सवारी में चलने वाले उमरावों-सरदारों आदि के निस्तेज चेहरे, मुरझाये दिल, स्वांग की पोशाक और घोड़ों की सुस्ती स्वतः सिद्ध करती है कि ये बेगार में पकड़े हुये हैं, बोझा ढो रहे हैं। मुसलमानों के ताजिया जुलूस में फिर भी जोशोल्लास की झलक आ जाती है उतनी भी अब राजाओं की सवारी में नहीं, समझदार लोग तो इन तमाशबीनों के जमघट में जाना भी पसन्द नहीं करते। अभी कुछ वर्ष पहले ऐसी ही सवारी (जुलूस) में शरीक न होने पर एक बड़े राज्य के चीफ जस्टिस ने उस राज्य के एक उमराव के सामने प्रसंगवश कहा था कि लोग तमाशा देखने जाते हैं और हम अपने को तमाशा नहीं बनाना चाहते, आदि। यही सोच कर जोधपुर के भूतपूर्व मुसाहिब आला म०रा० सर प्रतापसिंहजी ने जोधपुर में सवारियों का निकालना ही बन्द कर दिया, किन्तु लोगों के विचार से वे घाटे में ही रहे क्योंकि इन तमाशों की असलियत समझने वालों की संख्या अब भी सामान्य बुद्धि की जनता में कम ही है। प्रभाव न सही फिर भी राष्ट्रीय उत्सवों में राजा प्रजा के सहयोग जन्य आमोद की लहर किसी अंश में एक दूसरे को आत्मीय भाव के निकट पहुंचाती ही है, जो कि राज-पक्ष के लिये भी स्पृहणीय है और प्रजा भी अपने राष्ट्रीय उत्सवों में जीवन समझती है।

पहले यह धारणा सर्वत्र ही काम कर रही थी कि राजा के बिना राज्य का रहना और मानव समाज का शान्ति पूर्वक चलना असम्भव ही है, शरीर में प्राणों के समान ही देश के लिये राजा की आवश्यकता है। पृथ्वी के प्रायः समस्त भाग कुछ रूपान्तर से कभी इसी भावना के लीला क्षेत्र थे। परन्तु परिवर्तनशील प्रकृति ने पुराने पाठों के पन्ने बदल दिये और सिखाया कि राजा की आवश्यकता नहीं, प्रजा, जनता स्वयं अपने ऊपर राज्य कर सकती है। लोकतन्त्र ही पूर्ण शक्ति, सुख और शान्ति का निकेतन है। यदि जनता अपनी इच्छा से किसी को अपना राजा भी रखे तो वह स्वच्छन्द मालिक होकर नहीं किन्तु प्रजाकृत नियमों के आधीन प्रतिष्ठित सेवक के नाते रह सकता है। समता स्वतन्त्रता और बन्धुत्व प्रत्येक मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है, आदि। इस

नूतन लहर को सात समुद्र भी न रोक सके, उससे भारत भी अछूता न रहा। संयोगों ने भी प्रकृति का साथ दिया। ईस्ट इंडिया कम्पनी के चंद विलायती व्यापारियों के गुट ने शासन चलाकर ब्रिटिश भारतीय जनता की उस पुराने पाठ की धारणा को तोड़ बहाई किन्तु राजपूताने की प्रजा लोकतंत्र के स्पष्ट वातावरण से दूर थी। आजकल के शब्दों में राजपूताने का यह अंधेरा युग राजाओं के लिये गनीमत था।

जिस लहर के सामने हजारों कोस की दूरी भी तुच्छ थी, वह पडौस में या यों कहें हमारे घर के द्वार पर आकर कुंठित कैसे होती ? फिर भी ब्रिटिश भारत और राजस्थान में अन्तर बना ही रहा और वह है राजा और प्रजा का सान्निध्य और तज्जन्य आत्मीय भाव, अपनापन के संस्कारों का अस्तित्व। इतना सच है कि लोगों के हृदय में घुसकर टटोलने पर वह धर्म-सम्पुट राजभक्ति तो अब शायद ही कहीं मिलेगी, जमा खर्च दूसरी बात है।

प्रेम और प्रभाव, ये दो भाव शिलायें, राज-सत्ता की बुनियाद में प्रधान हैं। इनमें से प्रेम तो राजा और प्रजा के स्वार्थ में जब से एकता मिटी तभी से गया। प्रभाव भी गया। उधर ब्रिटिश भारत से भी गया इधर देशी राज्यों से भी गया। ब्रिटिश भारत से जाने का कारण है; समय समय पर किये गये असत्य वादों का घटास्फोट। असत्य सदा निर्बलता का प्रतीक होता ही है- एवं साम्राज्य-शाही का अपनी निःशस्त्र तथापि अहिंसा और सत्य के बल से बलीमान प्रजा पर घोर दमन का नाच, नाच कर थक बैठना और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं में दब्बू नीति पर विवश होना। इधर देशी राज्यों में कारण हुआ स्वराज्य की भावना का अखंड भारत में समान रूप से फैलते जाने के अतिरिक्त अनेक राजा महाराजा साम्राज्य सत्ता के द्वारा-नौकरशाही की इच्छा पर राज्य-च्युत, अधिकार च्युत करा दिये जाते और अंग्रेज अधिकारियों के आने पर उन्हें रिझाने के लिए की जाने वाली दौड़-धूप को प्रत्यक्ष देखने से प्रजा के हृदय से प्रथम कल्पित राजाओं का वह स्वतंत्र एवं समर्थ रूप न रहा इसके लिये राजा लोग सिर्फ उतने ही दोषी हैं जितना कि घुड़दौड़ की शिकार (Pig-Sticking) में सूअर को अपनी रकाब के नीचे घुसने का मौका देकर स्वयं मारा जाने वाला शिकारी सवार। फिर भी यदि राज-गण देश कालानुसार दूरदर्शिता से, प्रेम सहित अपनी प्रजा के साथ, जनहित-मूलक सत्य व्यवहार करें तो राज्यों का जीवन बढ़ने की आशा रखी जा सकती है। अभी तक उन्होंने अपनी प्रजा के विश्वास और आत्मीय भावना को सर्वथा खो नहीं दिया है। कोटा के वर्तमान महाराव उम्मेदसिंह जी एवं ऐसे ही कुछ अन्य नरेश इस क्षण तक इसके प्रमाण हैं।

राजा का व्यक्तित्व

यों तो प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में वैचित्र्य रहता ही है फिर भी एकीकरण की सामान्य पद्धति से मानव स्वभाव और चारित्र्य में सामंजस्य निरूपण करना समाज शास्त्र का सिद्धान्त है। उस निरूपण में कर्म, अकर्म, धर्म, अधर्म, नीति, अनीति आदि का विश्लेषण ही मनुष्यत्व को निखरा लेने की कसौटी है।

किसी जीर्ण संस्कार-बद्ध भावुक व्यक्ति को राजा चाहे देवताओं का व ईश्वर का अंश क्यों न प्रतीत होता हो, परन्तु राजा भी है आखिर मनुष्य नामधारी प्राणी ही। काम, क्रोध, लोभादि षड् विकारों से लिप्त साधारण से साधारण व्यक्ति से कोई भी राजा केवल राजा होने से ही ऊपर नहीं उठता। अत: उसके व्यक्तित्व को भी मनुष्यत्व के नाते प्रारम्भिक दृष्टि से जाचना होगा, और फिर वह सत्ता का प्रतिनिधि होने के नाते विशेष कसौटी से कसे जाने का पात्र है।

असंस्कृत मानव स्वभाव में मनुष्यत्व और पशुत्व का सम्मिश्रण रहता है। सात्विक चरित्र के अनुपात में ही मानव मनुष्यत्व के निकट पहुंचा हुआ कहा जायगा और तामसिक चरित्र उसे पशुत्व में ही व्यक्त करेगा। यही कारण है कि चरित्र पैमाने से ही किसी भी समाज या राष्ट्र का उत्थान और पतन नापा जाता है। यह सत्य है कि सामान्य व्यक्ति की चेष्टा उतनी सामने नहीं आती जितनी राजा की, क्योंकि हजारों लाखों आखें उसकी ओर निरन्तर घूरती रहती हैं। अतः वह सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा भी दया का पात्र हो जाता है यह उसका सौभाग्य समझा जाय या दुर्भाग्य ?

राजा का व्यक्तित्व कैसा होना चाहिये इस सम्बन्ध में तो आर्य जाति के श्रुति, स्मृति, महाभारत, रामायण, शुक्रनीति, आदि धार्मिक और राजनैतिक महान् ग्रन्थों में आदेश और आदर्श भरे पड़े हैं। उन्हीं आदर्शों पर अति सावधान होकर चलने के पुरस्कार में यह कहना अनुचित नहीं था कि "नराणां च नराधिप"। परन्तु अब वे हमारे लिये काल्पनिक चित्र हैं। हमारा लक्ष्य तो वर्तमान राजाओं के व्यक्तित्व पर ही प्रकाश डालना है।

जहां विधान बद्ध राज्य व्यवस्था है, जैसे कि इंगलैंड, वहां राजा का व्यक्तित्व देश के हानि लाभ, सुख-दुख में महत्व नहीं रखता। परन्तु हमारे यहां राज-सत्ता का सर्व सर्वा केन्द्र एक ही राजा नामक व्यक्ति पर आ जाने से देश के सुख-दुःख, शान्ति-अशान्ति का वही मूल हेतु हो जाता है। हमारे सामने इंगलैंड के साढ़े तीन राजा चले गये और पष्ट जार्ज आगये तथापि इस आने जाने में न किसी का बना, न बिगड़ा। परन्तु इधर देशी राज्यों में जाने वाले अच्छे बुरे राजाओं की पुरानी जाजमें (फर्श) उठती रहीं और नयों के साथ सर्वथा नई जाजमें बिछती रहीं। कौन कह सकता है कि उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंहजी की ठोस आर्थिक व्यवस्था, अंग्रेजों के महलों में आने पर मार्ग तक की गंगाजल से शुद्धि, महाराणाओं को मद्यपान न करने की पाषाण-लेख-बद्ध प्रतिज्ञा: महाराणा सज्जनसिंहजी को देश-कालानुसार बांधी हुई सुबद्ध राज्य-व्यवस्था, गौरवपूर्ण नीति-पटुता एवं महाराणा फतहसिंह जी का भारत के समस्त राजाओं और बड़े से बड़े ब्रिटिश अधिकारियों पर पड़ने वाला वह अनुपम प्रभाव गवर्नमेंट हिन्द तक को कायल करने वाला वह स्वाभिमान आज भी शेष है ?

यह मैंने केवल उदाहरण रूप से एक राज्य का नाम लेकर बताया है, बाकी इन समस्त राज्यों में इतना नाटकीय परिवर्तन हो गया कि जहां दिन था वहां रात है और रात थी वहां धुंधला दिन। कारण वही है, नये ने पुराने पर झाड़ू दिया और नई लीला रचाई। इस अस्थिर व्यवस्था में किसी को यह सान्त्वना नहीं कि प्रजा का जीवन कल किस प्रवाह में बहेगा। जिस राज्य व्यवस्था में भाग्य का कोई सम्बन्ध नहीं वहां प्रजा के हृदय पट पर तो यही लिखा है कि राजा करे सो न्याय, पासा पड़े सो दाव। अर्थात सब उस अलख भाग्य ही का खेल है। संक्षेप में हमारे राज्यों की दशा और लाखों व्यक्तियों का भला बुरा जीवन एक राजा के व्यक्तित्व पर ही निर्भर रहा है। ऐसी स्थिति में राजा के व्यक्तित्व को सामान्य उपेक्षा की वस्तु मानी ही कैसे जा सकती है ?

आगे चल कर हम अधिकांश राजाओं की सामान्य दिनचर्या एवं भावों का कुछ दिग्दर्शन करेंगे। उससे स्पष्ट है कि उससे अपवाद रूप जो राजा साधारण सज्जन व्यक्ति के अनुसार हो रहते हैं वे भी लोकप्रिय हो जाते हैं।

निष्कर्ष यही कि कथित राज-भक्ति की पुरानी लकीर पर चलने वाली बेचारी प्रजा जब राजा में सामान्य मनुष्य जितनी भी शीलता आज कल देखती है तो सतुष्ट हो जाती है। परन्तु आज सामान्य मनुष्यत्व भी राजाओं में दुर्लभ हो रहा है वहां आर्य आदर्श राज-चर्या की तो बात ही कहां ?

इस पतन के हेतुओं को उत्पत्ति ढूंढना कुछ कठिन नहीं है—

(1) यौवन मद, धनमद, और राजमद ये एक एक ही अनर्थ के मूल हैं जहां ये तीनों इकट्ठे हो जाय वहां अनर्थ का तो ठिकाना ही क्या ? इस तिधारे खड्ग पर सकुशल चले जाने वाले वदनीय क्यों न हों ? होंगे भी कभी, क्योंकि पुराने पोथे कहते हैं कि थे।

इतिहास के परिशीलन से भी जाना जा सकता है कि जब प्रतिक्षण सतर्क प्रजा के सामने उत्तरदायित्व और बाहरी आक्रमणों से राजा के प्राण मुट्ठी मे रहते हो एव राज भक्ति से परिचित लोग सद्भावना पर और प्रजा की धन जन से प्रबल सामूहिक शक्ति के पोषण पर ही राज सिंहासन के पाये अवलंबित हो, वहीं राजा का व्यक्तित्व संयमी, सरल, उदार, एवं प्रजा वात्सल्यादि गुणों से युक्त होना स्वाभाविक ही है। किन्तु अब तो मामला ही दूसरा है। अब केवल दो भूरी आखो की कृपा चाहिये। नि: सत्व लाखो काली आखें घूरती हैं घूरती रहे। राज सिंहासन के पायों का आधार ही दूसरे स्थान पर खिसक चुका। जन-शक्ति धन पर और धन शक्ति जूते के जोर पर आ ठहरी। अत: प्रांतिक नियंत्रण हट जाने से राजा के व्यक्तित्व का प्रजा के पक्ष मे उच्छृंखल और विचित्र हो जाना ही स्वाभाविक हो गया।

(2) किसी भी राष्ट्र या जाति के जीवन का आधार है उसकी भाषा और संस्कृति। भाषा परिवर्तन से संस्कृति स्वय विकृत हो जाती है। संस्कृति बिगड़ने मे प्राचीन व्यवस्था-बद्ध पद्धति के विशृंखल होने में देर नही लगती। प्राचीन पद्धति के अभाव में अपने आपको उसी पूर्व रूप में टिकाये रखना हास्यास्पद सा होता है। राजाओं के ह्रास की ओर परिवर्तन होने का भी यही अनुक्रम है वे अपनी संस्कृति और पद्धति में रहते हुए आज के जैसे काठ के पुतले बन नहीं सकते थे। इसी से ऊपर की कूटनीति ने सबसे प्रथम इनको अंग्रेजी भाषा के खोले मे ढ़ंकने के लिये ही इन राजाओ और इनके प्रधान अंग उमरावो, सरदारो, जागीरदारों के लिये मेयो कालेज, डेली कालेज, राजकुमार कालेज, एचिसन कालेज आदि विकृत शिक्षा के साँचे खड़े किये और हितैषिता के नाम पर राजाओं और सरदारों को दबा दबा कर उनके राजकुमारो आदि को इन साचो मे ठूंसा गया। कर्नल लाक (प्रिंसिपल मेयो कालेज) के समय तक इन साचों को कच्चे ही माने गये, अतः लार्ड कर्जन के फौलादी पंजे ने इनको फौलादी और मनोवांछित बनाया जिनमे कोई कच्ची कौड़ी ढल जाने की गुंजाइश न रहे। जिस समय इस कालेज के संबंध मे श्री वॉडिंग्टन, श्री जाइंन और श्री हिल लार्ड कर्जन का प्रतिनिधित्व कर रहे थे उस समय कुछ मनचले

सरदारो ने, जिनमें लेखक भी एक था, आवाज उठाई कि इन कालेजो का पाठ्यक्रम हीन और थोथा है ।

अतः यहां भी भारतीय युनिवर्सिटियों का पाठ्क्रम रहे, वही बी. ए., एम. ए. की डिग्रियां रहें, परन्तु दुतकार दिये गये। लार्ड कर्जन की सरकार ने इन गुडिया साचों को युनिवर्सिटी की शिक्षा से अछूत रखने में ही ब्रिटिश नीति की सफलता देखी, क्योंकि युनिवर्सिटियों की शिक्षाप्रणाली सदोष होते हुए भी उनमें न्यायमूर्ति रानाडे, सर टी. माधवराव, लोकमान्य तिलक, गोखले, लाजपत, महात्मागांधी, सी. आर. दास, मोतीलाल नेहरु जैसे निकल सकते हैं । परन्तु यहां तो उद्देश्य है इन गाठ के पूरे अकल के अन्धों को प्रारम्भ ही से विदेशी भाषा और शकर संस्कृति में ऐसे ढांक देना कि जिसके अंधकार में न अपना स्वरूप दिखाई दे, न ससार को ही ठीक देख सकें । नाम मात्र की शिक्षा के साथ खूब खेल कूद और विलायती विलासिता की मोहिनी के रंग में रंगे जाकर ऐसे विचित्र प्राणी बना कर निकाले जाते हैं कि जो घर के न घाट के । लेखक ने अनेक राजाओं को कहते सुना है कि कोई बात अंग्रेजी मे लिखी हो तो हम फौरन समझ जाते हैं । हिन्दी तो वाहियात है ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भरतपुर के अधिवेशन मे सम्मेलन के प्लेटफार्म से हजारों व्यक्तियों को सम्बोधन कर जिनमें कवि सम्राट श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी थे, भरतपुर के स्वर्गीय नरेश कृष्णसिंहजी ने कहा था कि "मुझे कहते हुए दुःख होता है कि हिन्दी मेरी मातृभाषा नही है । मेरी मातृभाषा तो अंग्रेजी बन गई क्योंकि मैं मेरी माता की गोदी मे नही पला, पला हूं इंगलिश लेडियों की गोद में और उन्ही की लम्बी सोहबत मे । मैं इस समय जो कुछ हिन्दी बोल रहा हूं वह मेरे आन्तरिक अंग्रेजी भावो का अनुवाद मात्र है । मैं अपने भावों को अंग्रेजी में ही ठीक ठीक प्रकट कर सकता हू हिन्दी में नही । मुझे स्वप्न भी अंग्रेजी मे ही आते है।" महाराजा कृष्णसिंह जी इस समय हमारे ससार में नही रहे परन्तु उनकी प्रतिमूर्तियां अनेक राजगद्दियों पर आज बैठी हुई है । ऐसी दशा मे राष्ट्रभाषा एवं अन्य देशी भाषाओ के मासिक कवि एव दैनिक, साप्ताहिक मासिक पत्रों के वे धुरन्धर लेखक जो देशोद्धार के साथ राजाओं की भी हितैषणा रखते हैं, अपने सारगर्भित भावों, विचारो और दलीलो के द्वारा देश की वास्तविक परिस्थिति पर राजाओं का ध्यान आकर्षित करने की धारणा रखते हैं, वे महान् भ्रम में है । राजा लोग अपनी भाषाओं को तो प्रायः छूते ही नहीं । अंग्रेजी पत्रों से भी व्यर्थ सर पच्ची करना पसन्द नहीं करते । अलबत्ता

विलायती पत्रों के ग्राहक रहते हैं जिनमें विलायती स्त्री-सौन्दर्य, खेल, शिकार एवं कुत्तों की जातियों की ही विशेषता रहती है। इन पत्रों में भी केवल चित्रों को ही उत्सुकता से देखते रहते हैं। कोई कोई कभी कालक्षेप के लिये प्रेमी प्रेमिकाओं के अंग्रेजी उपन्यास भी उठा लेते हों, यह दूसरी बात। घर में भी रात दिन अंग्रेजी ही बोलना पसन्द करते हैं चाहे, वह एक बटलर के जैसी हो या उससे भी गई बीती। वे इस शिक्षा मार्ग में बन कर, न रहे हंस और न रहे कौवा। ऐसी दशा में यह तो कोई आशा ही कैसे करे कि वे पुरानी राज प्रथा के अनुसार ब्राह्म मुहूर्त मे स्नान करके ईश्वर उपासना में बैठे और शान्तिपूर्ण दरबार भरे हुए गीता, महाभारत, रामायण आदि की कथायें सुने और ईश्वर तत्व या राज धर्म की विवेचना में सूर्योदय के सात्विक समय का लाभ लें। अब तो प्रात: कृत्य है इंग्लिश मोनिंग अर्थात् प्रहर दिन चढ़ने के बाद बिस्तर छोड़ना, और सबसे पहिले सिगरेट का धुआं उड़ाते हुए शेविंग बाक्स सामने रख कर मूछें घोटना और चाय पीकर शिकारी बन्दूक या पोलो का मोलट उठाना। यह है भाषा परिवर्तन के साथ ही आर्य संस्कृति का अन्त।

(3) उपरोक्त शिक्षा की रंगाई पर फिटकरी लगा कर रंग पक्का करने के लिये आवश्यकता हुई विलायत यात्रा की, और लगे उधर धकेले जाने। कुछ भोले लोगों को आशा हुई थी कि हमारे नरेश विलायत यात्रा से लोकतंत्री शासन का व्यापक और उदार अनुभव प्राप्त करके प्रजा को उन्नत दशा की ओर ले जाने में योग्य सिद्ध होंगे, किन्तु इस यात्रा के चस्के का परिणाम निकला विपरीत वे थोथे दिमाग ऐश आराम, भोग विलास की अनुपम सामग्री के चाक चिक्य में फस कर पूर्व संचित राज्य कोष के लाखों रुपयों की मुक्त-हस्त आहुति डाल कर वहां से विलायती विलासिता के सिवाय ला ही क्या सकते थे? यदि कुछ सीखा तो यही कि संसार में यदि मनुष्य है तो इग्लैंड में, परिस्तान है तो पेरिस मे, जीवन-कृतार्थता है तो यूरोप निवास में और हां इंडिया व इंडियन्स? नोनसेंस, डेम,। यही कारण है कि प्राय: इस समय के नवयुवक राजा गो धूम वर्ण की सन्तान पैदा कर चुकने पर भी भारतीय रंग और रहन सहन से पूरी नफरत करने लगे। अपनी प्रजा से दूर से दूर होते गये। इतना ही नहीं अंग्रेजों की सोसाइटी के बिना चैन न मिलने से अपनी राजधानियों को भी विलायत का रूप देने के अनर्थ को न समझ सके। उदाहरण देख लिया जाय। राजस्थान में आजकल जहां की चर्चा खूब है वहा के वर्तमान महाराजा विलायती शिक्षा पाकर प्रथम बार लौटे और अपने पड़ोसी राज्य में मेहमान हुए तब वहां के महाराज कुमार से प्रसंगवश बात करते हुए बोल उठे कि "देशी आदमी मूर्ख और बेईमान

हो होने हैं" इस पर महाराज कुमार ने प्रिय भ्राता को मीठी चुटकी लेते हुए कहा कि आप भी तो देशी ही हैं न ? इस पर महाराजा खिसिया कर मुसकरा दिये। लेखक को आंखो ने उस मुसकराहट में छिपाई जाने वाली खिसियाहट में यही पढा कि महाराज अपने अंग्रेजी मे उठते हुए भाव का हिन्दी अनुवाद ठीक न कर सके। वह लज्जा अपने भाव पर नही केवल भाषा पर थी। जहा सत्य के स्पष्टीकरण मे एक पक्ष में उपरोक्त महाराजा के लिये स्पष्ट संकेत है।

वहां यह भी स्पष्ट करना उचित है कि ऊपर भाषा और संस्कृति के सम्बन्ध मे जो कहा गया है उसमे वर्तमान उदयपुर महाराणा भूपालसिंहजी, कोटा के लोकप्रिय महाराव उम्मेदसिंह जी, सीतामऊ के राजा रामसिंह जी एवं उनके उदीयमान राजकुमार रघुवीरसिंह जी जैसे कतिपय न्यूनाधिक अपवाद रूप भी हैं।

(4) राजाओं के घरों में विलासिता की पहले भी कमी नही थी। परन्तु नई शिक्षा और नये प्रलोभनो ने संस्कृति की स्वाभाविक रुकावट को ठुकरा कर यह कहावत चरितार्थ कर दी कि "गिलोय और नीम चढ़ी" चारित्र्य भ्रष्टता ने उच्छृंखल होकर सर्वतोमुखी प्रवाह बहा दिया। यह सच है कि सब एकसा नही है परन्तु है आटा में नमक के बराबर। अधिकांश राजाओं के खानगी जीवन मे जो रोमांचकारी, रहस्यमय रंगरेलियां नग्न रूप में हैं उनके सबंध मे दिग्दर्शन के लिये केवल इतना सा कह कर हम मौन ही रहेंगे कि—

"धिक्कार है उन राज महलों को; जहां विष भर रहा।
नारकी है दृश्य सब, शैतान ताण्डव कर रहा॥"

राजा के व्यक्तित्व के नाते इस चारित्र्य दोष का प्रजा पर क्या भयकर परिणाम होता है, यह अखबारी दुनियां मे छिपा नही। इसे छोड़ कर राजनैतिक दृष्टि से देखने पर भी कहा जायगा कि राजाओं की इस समय जो दुर्गति हो रही है, पूर्वजों के बाहुबल से उपार्जित अंग्रेज जाति के जन्म से भी अति प्राचीन शक्तिशाली राज सिंहासनों पर बैठे हुए भी वे अनाथवत् कठपुतली के समान इशारों पर नचाये जा रहे हैं। इसके लिये अंग्रेज उतने दोषी नही। यह दौर्बल्य इन राजाओं के वैयक्तिक दुश्चरित्रों ही का परिणाम है। इनके लोभ और काम-

वासना के सबके सब कारनामे पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट में चुपचाप जमा होते रहते हैं। वायसराय जब अपनी नीति के लिये आवश्यक समझता है तब ऊपर से दो शब्द टपकते हैं "कि तुम या तो चुपचाप गद्दी छोड़ दो या हमारे नियत किये हुए अंग्रेज के हाथ में समस्त राज-सत्ता सौंप दो। हां, ऐसी दशा में तुम्हारे नाम का प्रयोग अवश्य किया जायेगा परन्तु खूब याद रक्खो कि कुछ भी दखल दिया तो सदा के लिये राजधानी से दूर रख दिये जाओगे। यदि उपरोक्त बातें स्वीकार न हों तो अपने कुकर्मों की जांच के लिये कमीशन स्वीकार करो।" बस। इस सहसा वज्रपात पर राजा भौंचक्का रह जाता है, उसके ए. डी. सी. और कृपा पात्र बगलें झांकने लगते हैं। उस समय उसके दुश्चरित्र एक एक करके सब सामने आ खड़े होते हैं। दुनिया में रहते हुए भी वह अपनी असलियत पर आंख खोलता है। अब यह कहने की हिम्मत रख ही नहीं सकता कि "आने दो तुम्हारे कमीशन को" लाचार होते हुए आत्म समर्पण कर देता है, उसे दूसरे के हाथ की कठपुतली बनना ही पड़ता है। सत्य है "आत्मैव रिपुरात्मन."।

इन राजाओं की व्यक्तिगत जीवन-चर्या समान न होते हुए भी कुछ बातें ऐसी हैं जो सामान्यतः न्यूनाधिक रूप में प्रायः सब राजा में मिल सकती हैं। किसी में एक नहीं तो दूसरी होगी ही। ऐसी बातों का संक्षेप में दिग्दर्शन यों हो सकता है। रात में जागना, दिन में आठ नौ बजे बिस्तर से उठना। सब काम छोड़कर शिकार के लिये भाग जाना, छोटे अर्थात् जिनको वे अपने से कम बुद्धि के समझें उन कृपा पात्रों से या जनाने से घिरे रहना, दिमाग लड़ाने जैसे गूढ़ विषयों में झुंझला कर आधीन राजकर्मचारियों पर उन्हें छोड़ देना, प्रजा से दूर रहना, मन तरंगों पर जवीन के क्षण व्यर्थ बिताना, राज कोष को बपौती मान कर मन चाहा खर्च करना या दिखावे के लिये हाथ खर्च (जरूरत से बहुत ज्यादा) लेकर उससे प्राइवेट व्यापार, लेन-देन करना और उस रकम को राज्याधिकार से बटोरना, अंग्रेज चाहे किसी हैसियत का क्यों न हो उसे खुश कर रखने में ही अपने सुख की गारन्टी समझना, कितना ही योग्य परन्तु देशी व्यक्ति का डेप्युटेशन मिलना चाहे तो खुशामदियों में निठल्ले बैठे गप्पें मारते या ताश के पत्ते खेलते हुए भी उत्तर दे देना कि अभी फुरसत नहीं, घर ही के सरदारों या प्रतिष्ठित नागरिकों को सौभाग्यवश कभी मिलने का मौका दिया भी तो चलती मुलाकात देना जैसे कि अंग्रेज अफसर साधारण हिन्दुस्तानी को देता है, देशी भाषा को त्याज्य समझ कर घर में भी अंग्रेजी ही का बोल-चाला रखना, अंग्रेजी भाषा न जानने वाले या देशी पोषाक में रहने वाले को दूर से ही मूर्ख मान लेना, अपने किसी भी कर्म को

समालोचना पर मुंह चढ़ा लेना, कृपा पात्र होने मात्र से ही अयोग्य व्यक्तियों को राज्याधिकार में स्थान दे देना, प्रत्येक सार्वजनिक कार्य से चौंक कर उसे तोड़ डालने में अपनी सावधानता समझना, स्वदेश, स्वतन्त्रता आदि शब्दों से भड़क कर इन्हीं में राजद्रोह घुसा देखना, गद्दी पर बैठने के समय और कुछ समय बाद तक उदार और फिर घोर कृपण हो जाना, और राग-रंग, मद्य, हा-हा-ही-ही, मोटर, वायुयान, शिकार, व्यभिचार की सुख-तरंगों में ही राजत्व की कृत-कृत्यता मान लेना।

इन सब बातों के साथ जो एक बात इनके परिवर्तन और पतन की मूलभूत सब में समान रूप में पाई जाती है वह है इनके स्वाभिमान का नाश। इस आत्म-स्वरूप की विस्मृति के कारणों का उल्लेख हम ऊपर कर ही चुके हैं। यदि ये राजा अपनी अधीन प्रजा के साथ ऐंठने को ही स्वाभिमान मानते हों तो वे महान् भ्रम में हैं। उस मिथ्याभिमान में तत्त्व ही क्या है? वह तो गौरव भ्रष्टता का प्रत्यक्ष चिन्ह है और उसको कोई भी बेहयायी के नाम से अधिक पहचान सकता है।

मेवाड़ के महाराणाओं को छोड़कर राजस्थान के राजाओं में देशाभिमान, कुलाभिमान एवं धर्माभिमान की इति थी तो मुस्लिमशाही के आगमन के साथ ही हो चुकी। फिरभी हमने अपनी आयुष्य के प्रथम भाग में इन राजाओं में स्वाभिमान की जो शेष झलक देखी उसका भी आज कहीं पता नहीं। उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंहजी, फतहसिंहजी, बून्दी के महाराव राजा रामसिंहजी, एक छोटी सी रियासत बांसवाड़ा के महारावल लक्ष्मणसिंहजी आदि स्वाभिमानी नृपतियों की वह तेजस्विता आज भी हमारे स्मृति पटल पर प्रकाश डाल रही है। उस झलक को हम तीन चार तरह के उदाहरणों से स्पष्ट करेंगे जिससे पाठक "तब" और "अब" का मार्मिक स्वरूप सहज जान सकें।

1 संवत् 1940 में उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंहजी मेहमान होकर जोधपुर गये। वहां जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंहजी ने महाराणा से कहा कि मैं एक असह्य घटना से विचलित हो रहा हूं और वह यह है कि मेरा ननिहाल और ससुराल नवानगर (जामनगर) में है। वहां के वर्तमान नरेश जाम बीभाजी ने अपनी एक मुसलमानी खवास(पासवान, रखैल) के पेट से पैदा होने वाले लड़के कालूभा को गोद लेकर राज-गद्दी का वारिस करार दे दिया है और गवर्नमेन्ट ने भी स्वीकार कर लिया है। इससे हमारा उस राज्य से सदा के लिए सम्बन्ध नष्ट होने जा रहा है। मैं अकेला कुछ नहीं कर सकता, आपकी मदद चाहता हूं।

महाराणा सदा हिन्दू धर्म के रक्षक और राजपूत जाति के शिरोमणि रहे हैं। इस पर महाराणा सज्जनसिंह ने सहायता देना स्वीकार कर लिया। दोनों ने सलाह करके उज्रदारी के तौर पर दो तार और दो खरीते गवर्नमेन्ट हिन्द के नाम लिखे और महाराजा जसवन्तसिंह ने वे अपने मुसाहिब पंजाबी श्री हरदयालसिंह के साथ जोधपुर के तत्कालीन रेजीडेन्ट कर्नल बेली के पास भेजकर जबानी कहलवाया कि जामनगर के जाम साहिब बीभाजी ने मुसलमानी के पेट से पैदा हुए लड़के को अपनी गद्दी का हकदार कायम करके गवर्नमेन्ट से मंजूरी ले ली है उसके उज्रात बाबत महाराणा साहिब उदयपुर और मैं दोनों ही तार व बा-जाबता खरीते देते हैं, वे सरकार अंग्रेजी में पहुंचा दें। पोलिटिकल रेजिडेन्ट ने वे तार खरीते उस समय के एजेन्ट टू दी गवर्नमर जनरल राजपूताना कर्नल ब्राडफोर्ड के पास भेज दिये और सूचना दे दी कि दोनों ही रईस आप से अजमेर में मिलेंगे।

महाराणा सज्जनसिंहजी उदयपुर लौटते समय महाराजा जसवन्तसिंहजी के साथ अजमेर पहुंचे। वहां ए.जी.जी. कर्नल ब्राडफोर्ड दोनों रईसों से मिलने के लिए किशनगढ़ की कोठी पर आये। उस समय ए.जी.जी. ने कहा कि "आप दोनों रईसों ने जामनगर के मामले में तार व खरीते भेजे वे बेजा है, क्योंकि हर एक रईस को अपनी ही रियासत के मामले में तहरीर देने व उज्रात पेश करने का अख्तियार है। कोई रईस दूसरी रियासत के मामले में दखल नहीं दे सकता। इसके अलावा राजपूताने की रियासत का कोई मामला होता तो किसी खास सूरत में आपका कहना और मेरा सुनना कुछ ठीक भी समझा जाता मगर जामनगर काठियावाड़ में है इसलिए आपका उज्र करना बेजा है, आप अपने खरीते वापस लेलें। जाम बीभा की शादी की हुई रानियों से कोई औलाद नहीं है, वह अपनी खाने-अन्दाज की हुई मुसलमान औरत के पेट से, खास उसी के नुत्फे से पैदा हुए लड़के को अपना वलीअहद बनाना चाहता है तो उसे कैसे रोका जा सकता है? महाराणा साहिब की तो कोई रिश्तेदारी भी नहीं है। इस पर महाराजा जसवन्तसिंहजी तो चुप हो गये परन्तु महाराणा सज्जनसिंहजी ने उत्तर दिया कि किसी समय समस्त भारतवर्ष पर हमारा अधिकार था। अब राजपूत जाति बहुत कम हो गई है। फिर मुसलमान बादशाहों की लड़ाइयों में लाखों राजपूत मारे गये, इससे हमारे राज्य गिनती के रह गये, जिसका हमें दुःख है। अब इस अमन के जमाने में भी राजाओं की खाने-अन्दाज मुसलमान व अंग्रेज औरतों के पेट से पैदा होने वाले दोगले लड़के रईस बना दिये जायेंगे तो ये रही सही रियासतें भी मुसलमान व ईसाइयों की हो जायेंगी। इसको हम

कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते। अपनी जाति की रक्षा करना हमारा फर्ज है। आप खुद अपनी कौम व मजहब की तरक्की के लिए कैसी-कैसी कोशिशें कर रहे है। पादरी लोगों की मिशन को दूर-दूर मुल्कों मे बल्कि हमारी रियासतो में भी भेजकर हर तरह की मदद देते है और उनके रहने व गिरजा वगैरह के लिये जमीन आदि देने के लिये हम लोगों पर दबाव डालते है। आपको अपनी कौम का ख्याल है उसी तरह हमें भी अपनी कौम का ख्याल होना स्वाभाविक है। क्या हम मनुष्य नही हैं? जामनगर काठियावाड़ में होने से क्या हुआ? है तो राजपूतों का ही। मालूम होता है जाम का दिमाग बिगड़ गया है मगर हमारा तो ठिकाने है। हम इस तरह राजगद्दियों को भ्रष्ट नहीं होने देंगे। यह ठीक है कि आपका ताल्लुक काठियावाड़ से नही है। इसीलिए तो ये खरीतें आपके नाम नहीं बल्कि वायसराय के नाम हैं। रही मेरी रिश्तेदारी की बात। रिश्तेदारी दो तीन पीढ़ी तक ही चलती है। मगर मेरा सम्बन्ध उससे भी अधिक व्यापक और चिरस्थायी है। चाहे आप मानें या न मानें परन्तु वास्तव में समस्त संसार उदयपुर के महाराणा को हिन्दू-सूर्य कहता है और मैं भी अपनी उस जिम्मेवारी को मानता हूं अतः जहां कही भी हिन्दू हों वहां तक मेरे अधिकार की सीमा है। यह मामला तो खास मेरी जाति के एक राजघराने का है और यही मेरे प्रबल प्रतिवाद का कारण है। हम अंग्रेज सरकार के भी दोस्त हैं इसीलिए नही चाहते कि व्यर्थ में ऐसा बवण्डर उठे जो वायसराय को भी कठिनाई में डाल दे। इसलिए आप मेरे नाम से यह नेक सलाह वायसराय को भेज दें कि वे जाम बीभा की मूर्खता पर स्वीकृति न दें। महाराणा के इस उत्तर पर ए. जी.जी. निरुत्तर हो गये और कहा कि ठीक है मैं आपकी मंशा से वायसराय को परिचित कर दूंगा और खुद भी कोशिश करूंगा। उम्मीद है गवर्नमेन्ट जामनगर संबन्धी फाइल आपके पास देखने के लिए भेज दे।

थोड़े ही समय बाद वह फाइल पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट ने उदयपुर भेज दी। परन्तु दुःख है कि इसी अर्से में महाराणा का स्वर्गवास हो गया। फिर भी परिणाम यह हुआ कि कालूभा जामनगर का उत्तराधिकारी न रहा। कैसा स्वाभिमान भरा था सज्जन का वह अनुपम व्यक्तित्व!

कालान्तर में उसी जाम बीभाजी ने दूसरी बार उसी मूर्खता भरी सनक से अपनी उसी या वैसी ही किसी मुसलमानी के पेट के दूसरे लड़के जसवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया, -उस समय किसी राजा ने चूं तक न की महाराजा जसवन्तसिंहजी भी मन मसोस कर- रह गये क्योंकि सज्जन की तेजस्वीता का बल संसार से उठ चुका था। यह उदाहरण है हिन्दू-सूर्य की

आसमुद्राचल भारत पर आत्मीयता का, कुलाभिमान का, स्वधर्माभिमान का और सर्वोपरि क्षात्रोचित स्वाभिमान का।

2. संवत् 1937 में मेवाड़ के मगरा जिला के हजारों भीलों के मर्दुमशुमारी पर एतराज करके राज्य के विरुद्ध बलवा कर दिया। उस प्रजा-विद्रोह को शान्त करने के लिए महाराणा सज्जनसिंह जी ने अपने पूर्ण विश्वस्त प्रधानमंत्री सुप्रसिद्ध कविराजा श्यामलदासजी को फौज देकर मगरा जिले में भेजे व शाम-दाम आदि से युक्ति पूर्वक शान्ति स्थापन में लगे हुए थे। कुछ समय बीतने पर सरकार हिंद ने महाराणा को लिखा कि इतने अर्से तक भी मेवाड़ में भीलों का बलवा नही दबा। मालूम होता है कि इस काम के लिए महाराणा की शक्ति नाकाफी है। गवर्नमेन्ट इस देरी को अपने लिये भी खतरे से खाली नही देखती क्योंकि मेवाड़ से मिले हुए गुजरात के सरकारी इलाको के भीलों पर भी बलवे का बुरा असर पड़ रहा है, इसलिये बलवा तुरन्त दबाया जाय या महाराणा गवर्नमेन्ट से सैनिक सहायता मांगे। महाराणा सज्जनसिंहजी ने गवर्नमेन्ट की उपरोक्त तहरीर को उत्तर के लिये फौजी कैम्प मे कविराजा श्यामलदासजी के पास भेज दी और उनके असली उत्तर को ही अपना उत्तर कह कर गवर्नमेन्ट मे भेज दिया जिस पर पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट इस सम्बन्ध में सदा के लिए चुप हो गया। वह उत्तर था "महाराणा बारह सौ वर्ष से जिस शक्ति के बल द्वारा अपनी इस प्रजा पर राज्य करते आ रहे हैं वह शक्ति-बल अब भी वर्तमान है। गवर्नमेन्ट तो कल की आई हुई है। हमें उसकी मदद की कोई आवश्यकता नही। यह मुकाबला किसी बाहरी शत्रु से नही है कि जिसमे सेना बल का प्रयोग किया जाय। महाराणा अपनी प्रजा को मार कर शान्ति नही करना चाहते। प्रजा तो पुत्र के समान शान्ति से ही समझाई जा सकती है। यदि इस विलम्ब मे गवर्नमेन्ट को अपने इलाको का डर है तो वह अपने घर का आप प्रबन्ध करें। उसका उत्तरदायित्व इस [illegible] कदापि नही"। यह उदाहरण है राजा-प्रजा के [illegible] मे [illegible] वाली तीसरी शक्ति को करारा उत्तर सुना[illegible] स्वाभिमान की।

लेने की जो क्रिया आज खुल्लम-खुल्ला व्यवहार में आ रही है उसके बीज आज से साठ वर्ष पहिले ही कुछ अंकुर रूप मे दिखाई पड़ने लगे थे। राजपूताना के एजेन्ट टू दी गवर्नर जनरल,कर्नल वाल्टर, ने महाराणा सज्जनसिंहजी को अपने आबू के अंग्रेज मैडिकल असिस्टेन्ट को राज्य में ले लेने का विनीत अनुरोध किया और उस असिस्टेन्ट की कार्य कुशलता की खूब प्रशंसा की। नीति मर्मज्ञ महाराणा सज्जनसिंहजी भविष्य तक को ताड़ गये और उत्तर दिया मैं उसको यहा भी असिस्टेन्ट ही की जगह दे सकता हूँ। ए.जी.जी. ने कहा कि एक अंग्रेज किसी देशी अफसर के नीचे कैसे रह सकता है ? महाराणा ने हसते हुए उत्तर दिया कि मैं भी तो एक देशी ही हू तो क्या आप चाहते हैं कि वे मेरा भी अफसर बन कर आवे ? मुझे अपने सब देशी अफसरो (राज-कर्मचारियो) की योग्यता पर पूर्ण विश्वास है अंग्रेज की कोई जरूरत भी नहीं। आप मेरे मित्र है अतः आपकी सिफारिश के कारण उतना सा भी स्वीकार करना पड़ा। आशा है अब आप भी आवश्यकता नही समझेंगे। यह उदाहरण है दूरदर्शिता और अपने घर के स्वाभिमान का।

4. एक छोटा सा परन्तु अनूठा उदाहरण हम और देंगे। वह है बांसवाड़ा जैसी छोटी सी रियासत के प्रति वयोवृद्ध महारावल लक्ष्मणसिंहजी के नाम एक खानगी चिट्ठी लिखी। उसके लिफाफे पर लिखा था 'प्राइवेट'। महारावल ने 'प्राइवेट' शब्द देखते ही उसे जाब्ता खरीते के साथ लौटा दी। खरीते मे लिखा 'कि सोते, जागते, खाते, पीते, यहां तक कि शौचालय में होते हुए भी प्रत्येक क्षण मैं राजा हूं मेरे जीवन में कोई ऐसा क्षण नहीं कि जिस समय मै अपने आप को राजा न मानता होऊं। ऐसी सूरत में मेरे यहां 'प्राइवेट' कोई स्थान नही। हां, तुम्हारे लिये 'प्राइवेट' और 'आफिशियल' का भेद हो सकता है क्योंकि तुम्हारी निजी हैसियत से मुझे लिखना चाहो तो प्रार्थना पत्र के रूप में लिखो। यदि ओहदे से लिखते हो तो नियमानुसार खरीता भेजो, साहब बहादुर इससे झल्ला उठे और ऊपर खूब लम्बी चौड़ी शिकायत की। परन्तु साहब के हक मे इसका परिणाम विपरित निकला। पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट ने उनका आयन्दा बांसवाड़े में रहना ही बन्द करके नीमच में रहने का आदेश दिया। मि. पिनहो इस पर बहुत लज्जीत हुआ।

यह बात हमने स्वयं महारावल लक्ष्मणसिंहजी के जबानी सुनी थी। इस उदाहरण से वर्तमान राजाओं के व्यक्तित्व को विचित्र रूप में ला देने वाले 'प्राइवेट लाइफ' शब्द के रहस्यमय निर्माण का खुलासा हो जाता है। अर्थात्

प्राय: शासक जाति का प्रत्येक व्यक्ति सब से पहिले कुछ चाहता है तो यही कि ग्राधीन राष्ट्र की जनता उसे अधिक से अधिक सम्मान दें, फिर खुद चाहे गिरी हैसियत का क्यों न हो ? किन्तु जहां बादशाह का अप्रत्यक्ष शासन नौकरशाही द्वारा चलता है वहा की जनता से वह सम्मान की मनोकामना उतनी पूर्ण नही हो सकती। परन्तु देशी राज्यों में स्थिति दूसरी है। यहाँ पुरानी प्रथा के अनुसार वही सम्मानीय माना जाता है जिसे राजा सम्मान दें और वह राज सम्मान राज्य के हित मे पुश्तों तक शिर कटवाने या असाधारण राज सेवा करने वाले व्यक्तियों के वंशजो को ही मिलने वाली चीज थी। राजा के बराबर तो कोई बैठ ही नही सकता उसकी खास बग्घी में सामने की सीट मिलना भी बड़े बड़े उमरावो के ही हक में हो सकता था। परन्तु प्रत्येक अंग्रेज और उनकी लेडियाँ तक भी चाहती है राजा की बगल मे बराबर बैठना, राजा को सामान्य दोस्त के मुग्राफिक बरतना क्योंकि ऐसी होने से ही वह प्रजा में स्वत: असाधारण प्राणी बन जाता है।

इसी लक्ष्य से नई शिक्षा का प्रथम पाठ ही यह है कि राजा हर घडी राजा नही रहता-हा, राजाग्रो के लिए वायसराय या शाहन्शाह हर घड़ी वायसराय या शान्शाह रह सकता है। अपने शाही दरबार में सिंहासन या गद्दी पर बैठने आदि के कुछ समय तक ही वह सही मायने मे राजा है, बाकी जीवन के शेष क्षणों में उसका अपना प्राइवेट जीवन है। इसी 'प्राइवेट' की ग्राड़ मे सब अंग्रेजों के साथ व्यवहार होता है बराबरी का। बेचारे देशी व्यक्ति तो हर घड़ी हीं अन्नदाता, गरीब-निवाज़ कह कह कर राजा ही मानेंगे, केवल त्याग हुआ है सम्मान-प्रतिष्ठा का तो अंग्रेज के हक मे परिणाम क्या हुआ ? लोगो की दृष्टि में कुछ भ्रम के दिन बीत जाने पर अब गोरी चमड़ी तो अपने असली स्वरूप मे ही रह गई न अन्दाता बनी न भयकर वस्तु। परन्तु राजाग्रो का वह प्राचीन वैयक्तिक महत्व जनता की दृष्टि से भी जाता रहा। सक्षेप मे इनका सारा जीवन ही 'प्राइवेट' हो गया और वड़ा परिवर्तन हुआ है 'तब और अब' में।



राजा और ब्रिटिश गवर्नमेन्ट

हम अपने पूर्व लेख में राजाओं के व्यक्तित्व का उल्लेख करके 'तब और अब' का कुछ अन्तर बता चुके है। आज का विषय है 'तब और अब' के सिलसिले में राजा और अंग्रेज गवर्नमेन्ट। राजाओं की पराधीनता वाली जिस लम्बी जंजीर की आखिरी कड़ी का जिक्र करना है उसमें यद्यपि हमारा विषय पुराने इतिहास का नहीं फिर भी शृंखला के नाते कुछ दिग्दर्शन करा देना आवश्यक हो जाता है।

संसार स्वार्थ में उलझा हुआ है। चाहे किसी युग की कथा लो बिना स्वार्थ की घटना विरली ही मिलेगी। भेद इतना ही है कि स्वार्थ के भी दो रूप हैं। एक है समूहगत स्वार्थ और दूसरा है व्यक्तिगत स्वार्थ। जिस देश, समाज या जाति पर उदीयमान भाग्य भानु की ऊषा का प्रकाश स्पर्श होता है उसमें समूह गत स्वार्थ की प्रधानता होती है। वहा वैयक्तिक स्वार्थ को सहज में ठुकरा देने की स्वाभाविक प्रवृत्ति सर्व सामान्य रहती है। भारतीय महाभारत का उदाहरण लें। उस समय कौरव और पाण्डव दल सामूहिक स्वार्थ में ओतप्रोत थे। तत्कालीन कृष्ण जैसी महान् और असाधारण शक्ति सम्पन्न विभूति भी चेष्टा करके भी सफल न हो सकी कि कौरव दल में से एक व्यक्ति भी फूट कर पाडव दल में मिल सका हो। यही सामूहिक स्वार्थ आज भी हम पश्चिम की सबल सत्ताओं मे प्रत्यक्ष देख रहे हैं। 'संगच्छध्वं संवदध्वं संवामनांसि, जानताम्' इस वेद मंत्र का व्यावहारिक अनुष्ठान वहा हो रहा है और यही उनकी उन्नति का आधार स्तम्भ है। परन्तु जिस देश, समाज या जाति मे व्यक्तिगत स्वार्थ का बोलबाला हो जाता है उसका या तो अस्तित्व ही नहीं रहेगा या वह दासत्व की जघन्य दशा में दिन काटते मिलेगा। अभाग्यवश इसी वैयक्तिक स्वार्थ ने भारत को आज ही नया सदियो से पराधीनता के दल-दल मे फास रखा है। हमारे इस 'तब और अब' में कुछ अन्तर इतना ही है कि तब वह पराधीनता राजाओं के हृदयो में अखरती सी थी और अब ये इससे प्रेम करने लगे हैं। यही अधःपतन या यों कहिये कि सर्वनाश की पक्की निशानी है।

मुसलमानी साम्राज्य में भी भारत पर पराधीनता का पर्दा था परन्तु फिर भी तत्कालीन भारतीय राजाओं की सत्ता स्वतंत्रता और स्वाभिमान की मात्रा अपेक्षा कृत अब से विशेष होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि सदियों तक मुसलमानी साम्राज्य के अन्दर मेवाड़ राज्य जैसे स्वतंत्रता की आन पर टक्कर लेने वालो के अतिरिक्त, दिल्ली का वर्चस्व मानने वाले शेष नरेश भी अपने घर में तो पूर्ण स्वतंत्र ही थे। हाँ निर्बल अवश्य हो चुके थे, किन्तु यह निर्बलता मुसलमानी साम्राज्य सत्ता के कारण न थी क्योंकि पठान व मुगल भी वीर और उदार जाति होने के कारण न तो भेद नीति पटु थे और न उन्होंने अपने आपको विदेशी मानकर केवल शोषण मात्र के लिये उठाऊ डेरा रक्खा। उनका हानि-लाभ, जीवन-मरण इस देश के साथ एक रस हो चुका था। उस समय इन राज्यो की निर्बलता का उदय था, पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष एवं स्वार्थ जनित गृह कलह और जातीय-जीवन के ऐक्य का अभाव जिसे पराधीनता का स्वाभाविक परिणाम ही कहना चाहिये, सदियों की पराधीनता के कारण सच्ची राष्ट्रीयता का तो उन्हें स्वप्न ही नही था। स्वधर्म और स्वजातीयता का प्राकृतिक लगाव भी उनके मस्तिष्कों में तिरोहित हो चुका था। वैयक्तिक स्वार्थ ही सर्वोपरि उपास्य था। मुसलमानी साम्राज्य के पतन काल में तो इस अंध स्वार्थ की ज्वाला पारस्परिक छीना झपटी मे इतनी भभक चुकी थी कि 'कहां की मच्छ गलागल नीति, कहां की जाति कहां की प्रीति।'

सम्भव था समय पाकर, ठोकरें खाकर भविष्य के खुले वातावरण में राजा लोग सम्हल जाते या सर्वथा नष्ट होकर भारत का मानचित्र ही दूसरा बन जाता परन्तु ईश्वर का विधान कुछ भिन्न ही था।

मुसलिम साम्राज्य के पतन काल की अंधेरगर्दी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रूप मे Divide and rule "फोड़ो और राज्य करो" की प्रधान भेद नीति को ही अपने साम्राज्य का मूलमंत्र मानने वाले पश्चिमी गौरांगों ने अपना जाल सहज बिछा पाया। भेद नीति के बीज भी वहीं पनपते है जहां वैयक्तिक स्वार्थ की खाद तैयार हो। इसीलिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी वालों को भारत बना बनाया खेत मिल गया। मुसलमानों के भोले भाले नवाबो और सरल चेता हिन्दू राजाओं ने नवीन कूटनीति के कुचक्र को नही समझा और वे सहज ही मे एक दूसरे से टकराये जाकर एक के बाद एक,विविध रूप से सुलह नामो के गूढ़ जाल में फंसते हुए, अपने घर ही में मेहमान हो चुके।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की यही कमाई आखिर ब्रिटिश साम्राज्य के रूप में परिणित हुई। फिर क्या हुआ, कैसे हुआ, क्यो हुआ यह बताना इतिहासकारों

का विषय है और विशद रूप से पर्याप्त बताया हुआ भी है अतः हम यहां कुछ नहीं कहेंगे। हम इतना ही जानते हैं कि इंगलैंड के किंग और भारत के सम्राट, मंदिर में स्थापित पवित्र मूर्ति के समान, लंदन में विराजमान हैं और हमारे सम्माननीय हैं। भारतीय राजाओं का भाग्य पोलिटिकल डिपार्टमेंट के द्वारा भारत के वायसराय के हाथ में है और वे सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के माध्यम से विलायत की जनतंत्रात्मक पार्लियामेन्ट एवं निर्वाचित मंत्रिमंडल के समक्ष उत्तरदायी है। भारतीय गवर्नमेन्ट और ब्रिटिश गवर्नमेन्ट इन दो सिरों पर बंटी जाती हुई डोरी के सहारे भारतीय नरेश लटके रहते हैं और इस डोरी का नाम है पोलिटिकल गठबन्धन। विचित्रता यह है कि इस डोरी में उल्टे-सुल्टे दोनों तरह से यथेच्छ बट लग सकता है।

तब, प्रत्येक राज्य की राजधानी में एक एक एजेन्ट साहब या रेजिडेन्ट साहब रहा करते थे। वे सब तेज दृष्टियुक्त निरीक्षक थे। इस पद की प्राप्ति के लिए किसी अंग्रेज को विद्वान होने की आवश्यकता नहीं। ये प्रायः गोरी पलटन से छांटे हुए साधारण ओहदे के ही व्यक्ति होते हैं। होने चाहिये चुस्त और चालाक। जिसका प्रारब्ध खुल जाय और अच्छी सिफारिश मिल जाय वही 'राइट-लैफ्ट' की झंझट से छुट्टी पाकर स्वर्ग-सुख भोग के लिये पोलिटिकल लाइन में ले लिया जाता है। कुछ समय इनको सूत्र रूप शिक्षण अवश्य मिलता है-यथा, वे अपनी पाठ्यपुस्तक के इस गूढ़ वाक्य को ठीक ठीक समझ लें कि "A politician is one who leaves well undone" अर्थात् राजनैतिक पुरुष वह है जो प्रत्येक कार्य और विषय के भाव को ऐसे ठीक मौके पर खूबी के साथ अधूरा छोड़ देता है जो समयानुकूल अपने हक में बदल लिया जा सके। समय समय पर इनको खास गुप्त हिदायतें ऊपर से मिलती रहती हैं। अतः चाहे किसी स्वभाव का क्यों न हो वह सदा टकसाली होता है और समान रूप से शृंखला बनी रहती है। ये ही राजा और राज्य पर सर्वेसर्वा होते हैं। इनकी हिलाई हुई डोरी कदाचित् ही कुंठित होती देखी गई इनकी गलतियां भी विचित्र ढंग से पोषण पा जाती है या ढंक ली जाती हैं। सच तो यह है कि हमारे राजाओं के साथ अंग्रेजी गवर्नमेन्ट का राजनैतिक संबंध एक ऐसा गोरख धन्धा है कि जिसे स्पष्ट समझने में काले मुंह की लेखनी को हजारों पृष्ठों का ग्रंथ रंगना पड़े और फिर भी अधूरा रह जाय क्योंकि पात्र, स्थिति, समय और आवश्यकता से अनुरूप परिवर्तनशील ऊपरी नीति गंधर्व-लेख के समान विभिन्न और विचित्र रूप से बदलती रहती है और इतने पर भी सत्ता वृद्धि का मूल तत्व तो बना ही रहता है। कभी सुलहनामों के साथ विभिन्न और विचित्र व्यवहारों की प्रधानता दी जाती है, कभी सुलहनामों को रद्दी की टोकरी का कागज (Scrap of paper) कह

पर ठुकरा दिया जाता है और फिर वही मुलहनामे पवित्र-पत्र एवं गारंटी के नाम से पूजे जाते हैं। यदि साम्राज्य या भारतीय सीमा या भारतीय जनता में अशांति देखी तो राजा लोग तुरन्त छाती से लगा लिये जाते हैं और शान्ति रही तो राज्याश्रित सरदारों या जनता की साधारण पुकार को बढ़ावा देकर युद्ध अकड़ने वाले राजा का कंठ पकड़ लिया जाता है।

हमने तब देखा इन राजाओं की स्थिति नजरबन्द राजनैतिक सभ्य कैदी के समान ही थी। पोलिटिकल विभाग का आदेश पाये बिना न वे राजा एक दूसरे से मिल ही सकते थे, न स्वतंत्र पत्र-व्यवहार ही कर सकते थे, और न अपना 'सैल' (Cell) राज्य-सीमा छोड़ कर बाहिर जा ही सकते थे। अति निकट सम्बन्धी की मृत्यु या विवाह में जाने की अनिवार्यता सिद्ध करने पर पोलिटिकल विभाग की आज्ञा प्राप्त करने में सफल होते हुए भी वहां का पो. रेजिडेन्ट वार्डर के तौर पर उनके साथ ही रहता या-गन्तव्य स्थान के रेजिडेन्ट के चार्ज में सकेत किये जाते और सब कार्य इन अधिकारियों की देख रेख में होता। यदि कोई अपने अनुवंशिक संस्कार जनित स्वाभिमान व अधिकार पर अड़ता तो शर्त-नामों को ताक में रखकर आतरिक मामलों में भी ऊपरी हाथ डालकर भीतर ही भीतर दबोचा जाता ताकि उसको संपट ही न बधे और आखिर घबराकर ठिकाने आ जाय। इतने पर भी कोई पक्का अड़ियल ही साबित हुआ तो उनकी मृत्यु की प्रतीक्षा में ढीली डोर भी कर दी जाती रही और माइनोरिटी (नाबालिगी) का समय आने पर सब कसर सहज निकाल ली जाती जब कि पोलिटिकल विभाग ही के हाथ में सर्व सत्ता आ जाती है। ऐसी दशा में जब पुराना खजाना खाली न हो जाय अर्थात् बल न टूट जाय और सैनिक बल अपनी इच्छानुसार सीमित और स्वाधीन न हो जाय तब तक आगन्तुक नये राजा के लिये मुट्ठी ढीली नहीं होती। यही सब बातें थी "तब" के राजाओं को अखरने वाली और जब तक इस अखरने का अंश रहा तब तक राजाओं को उपरोक्त स्थिति में रखना ही उनके ऊपर की गवर्नमेन्ट के लिये स्वाभाविक नीति हो सकती है। कोई क्या दोष देगा, क्योंकि कवि गिरिधर के शब्दों में-

"जाकी धन-धरती लई, ताहि न लीजे संग।
जो संग राखे ही बने, तो करि राखु अपंग।
तो करि राखु अपंग, भूलि परतीत न कीजे।"

परन्तु अब उस जाहिरा दैन्य दशा में परिवर्तन हो चुका। अब ये राजा-गण साधारण उत्सवों में, शिकार के आमन्त्रणों में मित्रता की मेहमानदारी में

जब चाहें तब एक दूसरे के यहां आ जा सकते है, मिल सकते हैं बल्कि नरेन्द्र मंडल के नाम पर ऊपर से आग्रह पूर्वक मिलाये भी जाते है। यहां नरेन्द्र मंडल का उल्लेख होने पर एक पुरानी बात स्मरण हो आई वह भी हम कह दें। एक बार अजमेर मेयो कालेज की कमेटी के प्रसंग पर आये हुए ग्वालियर के स्वर्गीय ख्यात-नामा महाराजा माधोराव से प्रसंगागत बातों में इस लेखक ने नरेन्द्र मंडल की स्थापना पर बधाई दी कि अब आप लोगों को दिल खोलकर परामर्श करने का मौका मिल गया है, सब नरेश एक नीति के सूत्र में गुंथ कर चलें तो देशी राज्यों का जीवन अधिक स्थिर और उज्ज्वल हो सकता है आदि। इस पर उन स्वर्गीय महाराजा ने जोर से हंसी का ठहाका मारकर कहा कि "अरे, तुम क्या जानो। सी. आई. डी. की न लिमिट है न तशरीह। हमारे भीतर भी दादा भाईयों की कमी नहीं। पेट पकड़े ही बैठे रहते हैं। ज्यों ही मुंह से शब्द निकला नहीं कि वायसराय के पास पहुंचा नही। वहां के बनिस्पत तो मैं आप लोगों से अधिक खुल कर बात कर सकता हूं। अभी हमारी किस्मत पर कोहरा है।" दुःख है, माधव महाराज जैसी तीक्ष्ण दृष्टि, साहस और तेजस्विता भी अब कही नही देखी जाती। खैर मैं कह रहा था पोलिटिकल विभाग की ऊपरी नीति में अब परिवर्तन हो गया। रेजिडेन्टो के बिस्तर भी कई राज्यो से दूर जा पडे और कम भी हो गये। अब राजाओ की दशा 'सेल' के कैदी जैसी नही बल्कि 'काला पगड़ो' के बराबर है। इस परिवर्तन के मूल में कई कारण हुए हैं उनमे से एक वह भी है जिसको हम 'राजा का व्यक्तित्व' शीर्षक से अपने पूर्व लेख में बता चुके हैं। उसी के आधार पर नीति-चतुर शासकों ने उपरोक्त गिरिधर कवि की बताई नीति के बदले सहूलियत की नीति स्वीकार की जिसको कोई कवि इन शब्दो में कह सकता है:--

क्यों कर रखे अपंग, अंग अपना कर लेना।
दवा कंठ पर हाथ, स्वत्व कुछ लौटा देना॥
विनिमय का ही महत्व, धातु कुछ भी हो क्यों ना।
तावा, कांसी, निकल, रजत, चाहे हो सोना॥
अपने सांचे ढाल कर, मन-अनुरूप बनाइये।
इक टकसाली भाव में, फिर सब नाच नचाइये॥

वास्तव में जब गवर्नमेन्ट को अनुभव-जन्य यह विश्वास हो गया कि ये प्राणी अब यथेच्छ हमारी टकसाल में ढक चुके हैं हमारे अस्तित्व में ही ये अपना अस्तित्व दृढ मान चुके हैं, इनके घर में खजाना, सेना, दफ्तर, सामग्री, सलाह

ग्रादि कोई भी ऐसा गोप्य नहीं जिसे ये हमारे सामने स्वयं पेश न कर देते हों रंग रूप ग्रौर धर्म में ये कुछ ही हों किन्तु सत्ताधारी के नाते ये हमारी जाति से भिन्न नहीं, तब इन राजाग्रों को इतना-सा ढीला छोड़ना युक्तियुक्त ही था। इसके उपरान्त कूटनीति, मर्मपटु पोलिटिकल विभाग की दृष्टि से यह नीति भी छिपी नहीं थी कि 'चक्रं सेव्यः नृप सेव्यः न सेव्यः केवलो नृपः'। ग्रतः वैयक्तिक स्वार्थ को प्रश्रय देने में ही ग्रपना हित समझने वाली विदेशी सरकार ने उपाधि वितरण का भी जाल फैलाया, ब्रिटिश भारत में जो सरकारी नौकरी में जीवन बिताते हुए योग्य सेवक सिद्ध हो उनको उपाधि से विभूषित करना गुण-ग्राहकता समझी जा सकती है। परन्तु जिनका ब्रिटिश सेवा संबंध में लेश भी योग नहीं उन देशी राज्य-निवासियों को टाइटलों-खिताबों से बांधना एक रहस्य है। रैजिडेन्ट लोग खूब भांप लेते हैं कि राजा पर किस व्यक्ति की सलाह का, स्नेह का लाभ का ज्यादा ग्रसर है फिर चाहे वह उमराव, सरदार, दीवान, ग्रहलकार, डाक्टर, इंजीनियर, सेवक-कोई कुछ क्यों न हो, वे उसे ही राय साहब, राय बहादुर, खान बहादुर, सर एवं ए. बी. सी. डी. के ग्रक्षरों की उपाधियां दिला देते हैं। यह है बिना कौड़ी पैसा दिये गुलामी की सुन्दर जंजीर में बांध देना। यदि मिस्टर डेविड के शब्दों में कहें तो "ऐसी सयानी भेड़ के गले में घंटी बांध देना है कि जो ग्रपनी ऊन कतरवाने में कान नहीं हिलाती ग्रौर दूध निचुड़वाने में टांग नहीं उठाती"। ऐसे टाइटलों से पाने वाले को तो कौड़ी का लाभ भी नहीं होता परन्तु यदि सरकार नाराज होकर इन्हें छीन ले तो सारे देश में फजीहत हो जाने का भय तो ग्रवश्य हो जाता है। ग्रतः जब किसी मुद्दे पर राज्य ग्रौर गवर्नमेन्ट के हित टकराते हैं तो वे बेचारे राजा को ही दबाते हैं। सत्य तो यह है कि यह प्रथा राज्यों के हित में महान् घातक है।

वह समय था तब जब उदयपुर, बून्दी ग्रादि के नरेशों ने बड़े से बड़े जी. सी. एस. ग्राई. के टाइटल को भी महाराणा, रावराजा, राजराजेश्वर, राज-राजेन्द्र ग्रादि ग्रपनी महान उपाधियों के समक्ष तुच्छ समझ कर ठुकरा दिया था ग्रौर ग्रब नरेश मेजर, लेफ्टिनेन्ट कर्नल ग्रादि हीन उपाधि मिलने पर भी जलसे करके ग्रपने ग्रापको निहाल समझ लेते हैं।

भारत के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बड़ौदा के महान् दीवान सर टी. माधवराव ने बड़ौदा के स्वर्गीय यशस्वी महाराजा सयाजीराव को जो उपदेश ("मेजर एण्ड माइनर हिन्टस्" के नाम से प्रसिद्ध है) दिये थे उन्हीं को यदि वर्तमान नरेश मनन कर लेते तो राजा ग्रौर गवर्नमेन्ट का वास्तविक ग्रौर हित कर सम्बन्ध उन्हें मालूम हो जाता ग्रौर व्यर्थ की ग्रापदाग्रों से बचते। परन्तु

ठीक है अब वह समय ही न रहा। अब तो राजाओं के घर के भीतर ही अंग्रेज प्रधानों का बोलबाला है। राजा तो उनके निर्णय पर हां कह देने वाले जीवित मशीन मात्र हैं।

विषय बढ़ जाने के कारण हम यहीं रुकते हैं, परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि वर्तमान राज्यों का अस्तित्व गवर्नमेण्ट का आभारी है। यदि अंग्रेज भारत में न आते और इनकी रक्षा का भार न उठाते तो आज के भारतीय मानचित्र में पीला रंग रहता या नहीं- सन्देहास्पद ही है। ईश्वर के विधान में भलाई-बुराई का मिश्रण रहता ही है -

विषमप्यमृतं भवेत् क्वचित्
अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।

(कालिदासः)



शिक्षा विषयक विचार

शिक्षा विषयक विचार

(अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति भारतीयों में सदा दास भावना बनाये रखने और उनकी चाकरी करते रहने के लिए थी। केसरीसिंहजी का प्रयास था कि देशवासियों में प्रधानतः क्षत्रिय जाति में, स्वाभिमान और देश प्रेम की भावना पैदा करने वाली शिक्षा पद्धति प्रारम्भ की जाय। सन् 1903-4 में बंगाल में नेशनल कॉलेज की स्थापना की गई थी, जिसके प्रथम प्रिन्सिपल श्री अरविन्द बने। उधर 1902 में एशिया के छोटे से देश जापान ने ज्ञान-विज्ञान में उन्नति करके ऐसी शक्ति हासिल की कि उसने विशाल रूस देश को पराजित कर दिया। इससे भारत में अंग्रेजों के विरूद्ध व्यापक क्रांतिकारी भावनाओं का प्रसार हुआ। इन सब बातों से राजस्थान के केसरीसिंह जैसे देशभक्त और क्रांतिकारी प्रभावित एवं प्रेरित हुए। सन् 1904 से 1913 के दौरान कुंवर केसरीसिंह बारहठ द्वारा राजस्थान और मध्यभारत में नई राष्ट्रीय शिक्षा योजना प्रारम्भ करने के प्रयास किये गये। केसरीसिंह ने प्रारम्भ में 1904 में राजस्थान में एक "क्षत्रिय कालेज" की स्थापना के लिए प्रयास किया। उसके बाद 1908-1909 में दौरान जापान में तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने हेतु विद्यार्थियों को भेजने के लिये "राजपूताना एंड सेन्ट्रल इंडिया एज्यूकेशनल एसोसियेशन" की स्थापना की कोशिश की। 1913 में उन्होंने क्षात्र शिक्षा परिषद् की योजना बनाई। उन्हीं दिनों आपने मारवाड़ क्षेत्र के राजपूतों में जागृति के लिये विशेष तौर पर "मारवाड़ क्षत्रिय परिषद्" के विधान एवं कार्यक्रम की रूपरेखा भी तैयार की। आगामी पृष्ठों में केसरीसिंह के राष्ट्रीय शिक्षा संबंधी विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

क्षत्रिय कॉलेज की योजना[1]

संसार में यह सिद्धान्त तो अभ्रान्त रूप से सर्वसम्मत हो ही चुका है कि कोई भी व्यक्ति, जाति, देश बिना विद्या के कदापि किसी योग्य नहीं बन सकता। सच्चे नेत्र विद्या ही हैं, जिसको ये नेत्र नहीं है वह चर्मचक्षु रखता हुआ भी अंधा है। विद्या की महिमा कौन नहीं जानता ? जब तक प्रत्येक व्यक्ति अपने पास विद्या बुद्धि की इतनी पूंजी भी नहीं रखता कि जिससे वह खुद अपने हानि लाभ पर, कर्तव्याकर्तव्य पर और प्रत्येक विषय के कार्य के कारण पर स्वतंत्रता से विचार कर सके, निर्णय पर आसके और दृढ़ सिद्धान्त बांध सके, तब तक उस व्यक्ति, जाति व देश का जीवन मृतक ही समझना चाहिये। सखेद कहना पड़ता है कि हमारी शासन करने वाली प्रसिद्ध राजपूत जाति विद्या से पूर्ण वंचित है। हमारी वीर जाति रूपी फोलादी नाव में अविद्या के जंग से अनेक छिद्र पड़ गये हैं और सहस्त्र धार होकर अनर्थरूपी जल भीतर भरता जा रहा है। जो नाव किसी समय औरों को तारती थी वह आप स्वयं ही तरने में अशक्त है। यदि कुछ समय यही दशा रही तो निसन्देह इस इतिहास प्रसिद्ध जाति नौका के आखिरी किनारे पर भी पानी फिर जायेगा और देखते ही देखते अपने मान, गौरव और राजसिक स्थिति पर जल उछाल कर सदा के लिए, रसातल को चली जायगी। इसी भयानक भावी पर दीर्घ दृष्टि डालकर आप व आप जैसे ही उदारचरित् जातिहितैषी अनेक मान्यवरों ने अनुमान एक वर्ष पहिले अजमेर में मिलकर एक "क्षत्रिय कॉलेज" कायम करने का एक प्रशंसनीय प्रस्ताव करके और साथ ही योग्य उदारता के साथ अतुल उत्साह बता करके सब तरह से उन्नत आशा का सचार कर दिया था। सन्देह नहीं की वैसा करके भवादृश ही परम धन्यवाद के पात्र हुए हैं ! परन्तु सज्जन वर्य ! खेद है कि वह परम उपयोगी प्रस्ताव अभी तक केवल कागजों में ही रहा किन्तु कार्य मे परिणित न हुआ। इसके परिणाम मे केवल जातीय हानि ही नही किन्तु चारो ओर से हम

---

1 अजमेर मे 1904 में आयोजित क्षत्रिय महासभा में क्षत्रिय कॉलेज की स्थापना का प्रस्ताव पास हुआ था और उसके लिये एक कमेटी का गठन किया था। इस कालेज की स्थापना के सम्बन्ध में केसरीसिंहजी ने पत्र-व्यवहार द्वारा जो विचार प्रकट किये यहाँ दिये जा रहे है।

पर दीर्घसूत्रता, क्षणिक उत्साही, स्वार्थनिमग्नता आदि दोषों का भी यथार्थ आरोपण हुआ है और यह भी कलंक लगा है कि "जाति स्थिति पर ध्यान न देने की अपेक्षा ध्यान देकर फिर चुप हो जाना मानो जलते हुए निज घर को देखकर जागते ही सोते रहने के समान अज्ञात ही नहीं किन्तु घोर अपराध भी है।"

यही सब ध्यानमें रखकर और कॉलिज सम्बन्धी कार्य चलाने का दृढ़ संकल्प करके निम्नलिखित कितनेक महोदयों ने एक "राजपूत कालेज कमेटी कायम" की है। इस कमेटी में अभी तक जितने मेंबर कायम हुए हैं उनके नाम नीचे लिखे गये हैं और ये सब कॉलेज के महान् उद्देश्य को सर्वांगरूप से सिद्धि पर पहुंचाने के लिए भारत के विशाल क्षेत्र से विपुल अर्थ-संग्रह करने आदि कामों को कैसे छेड़ना, चलाना, नियमबद्ध करना, और प्रबन्ध करना आदि सब विषयों पर निर्णय करेंगे। यह भी निश्चय हुआ कि खुद कमेटी किस शैली से काम करेगी और अपने लिये भी क्या क्या नियम बनायेगी और कार्य छेड़ने के पहिले कई गम्भीर विषयों को कैसे तय करेगी और सब तय करने के लिये एक बार इस कमेटी के सब ही मेम्बरों को एकत्रित होना परम आवश्यक है। पूर्ण विचार होने पर यही स्थिर हुआ कि आगामी मार्च मास में जब वालटरकृत कमेटी की जनरल मीटिंग अजमेर में हो ठीक उसी अवसर पर "राजपूत कालेज कमेटी" के मेंबर भी वहां आवें।

मैं कमेटी की ओर से आप माननीय को निवेदन करता हूं कि आप अपने मैम्बर पद को स्वीकार करते कमेटी को अनुगृहीत करेंगे और स्वीकार पत्र के साथ ही नियत समय पर अजमेर पधारने का निश्चयात्मक विचार प्रकट करेंगे। परन्तु स्मरण रहे कि आपका अजमेर पधारना कमेटी परम आवश्यक समझती है और आपकी हितैषिता पर पूर्ण आशा बांधती है।

"राजपूत कॉलेज कमेटी के सभ्य"[1]

ठाकुर साहब देवीसिंहजी चोमू जयपुर, ठा. सा. उमरावसिंहजी मेम्बर कौंसिल जयपुर, ठा.सा. पोकरन जोधपुर, ठा.सा. शिवनाथसिंह जी बैड़ा जोधपुर, ठा. सा. रघुबीरसिंहजी मेम्बर कौंसिल बीकानेर, ठा. सा. जीवराजसिंहजी

1. यह सभी सदस्य तत्कालीन राजपूताना की विभिन्न रियासतों के विशिष्ट उमराव, मन्त्री एवं प्रबुद्ध चेतना वाले पुरुष थे जिनकी शिक्षा एवं समाज सुधार के प्रति विशेष अभिरुचि थी।

बीकानेर,कँवर साहब ऊँकारसिंहजी पलायता कोटा, (सेक्रेट्री) राजासाहब विजय सिंहजी कुनाड़ी कोटा, ठा.सा. कल्याणसिंहजी मेम्बर कौंसिल बून्दी, ठा.सा. दुर्जन सिंहजी जावली अलवर, कुँअर सा. नारायणसिंहजी अलवर, ठा. सा. ध्यानपाल सिंहजी करौली, ठा. सा. भारतसिंहजी कृष्णगढ, ठा. साहब सिरोही, ठा. सा. शिवदानसिंहजी जैसलमेर, ठा. सा. दलपतसिंह जी वणकोटा डूंगरपुर, ठाकुर साहब प्रतापगढ, ठाकुर साहब मोतीसिंहजी गतौड़ा बासवाड़ा, म. कँवर साहब उम्मेदसिंहजी शाहपुरा, ठा. सा. गोपालसिंहजी खरवा अजमेर, ठाकुर साहब गजसिंहजी बादनवाड़ा अजमेर, बाबूसाहब श्यामसुन्दरलालजी दीवान कृष्णगढ़, कविराजा साहब मुरारिदानजी जोधपुर, बारहठ ठा. सा. कृष्णसिंहजी जोधपुर, बारहठ ठा. सा. रामनाथजी कृष्णसिंहजी जोधपुर, बारहठ ठा. सा. रामनाथजी कृष्णगढ, ठा. सा. फतहकरण जी उज्ज्वल उदयपुर, मनीषी समर्थ दानजी अजमेर, ठा. सा. गोविन्दसिंह जी बदनौर मेवाड़, ठाकुर साहब माधो सिंहजी बाठरड़ा मेवाड़, महाराजा साहब बलभद्रसिंह भालावाड़

राव बहादुर श्यामसुन्दरलालजी दीवान कृष्णगढ़ को पत्र

आपको स्मरण होगा कि अनुमान आठ मास पूर्व अजमेर में राजपूताने के प्रसिद्ध प्रसिद्ध क्षत्रिय सरदारों ने मिलकर "क्षत्रिय कॉलेज" खोलने का एक प्रशंसनीय और परम उपयोगी प्रस्ताव पास किया था और निस्संदेह वह समयोचित ही था क्योंकि यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि बिना ज्ञान के संसार में कोई भी कार्य नहीं हो सकता। जब तक प्रत्येक व्यक्ति निज स्वरूप को देखने के लिए हृयचक्षु प्राप्त न करले तब तक उसके हित की सब ऊपरी चेष्टाएं वृथा होंगी किमधिकम् स्वयं सुधारकों को समझ लेना चाहिये कि वे जो कुछ देख रहे है। वह सब उनको किसने दिखाया,'उस ज्ञान का साधन विद्या है। सबको उस साधन तक पहुचा दो वे स्वय नेत्र प्राप्त करेंगे, देखेंगे, चलेंगे और दूसरों को भी नेत्र देने का साहस करेंगे। वर्तमान साधकों के लिये यही एक मात्र उचित मार्ग है। नोचेद्, अंधों को स्वय नाटक बताना उनकी कल्पना को नाहक कष्ट देना है।

परन्तु सज्जन वर्य ! फिर सखेद देखना पड़ता है कि वह प्रस्ताव वास्तव में जागती हुई जाति के उद्‌गार नहीं थे किन्तु भर निद्रा में सोती हुई जाति का बरड़ाना था। परन्तु मालूम हुआ कि मिलकर कार्य करने के संस्कार को चिरकाल

मे भूल जाने वाली या पविनत-सत्ता की व्यापकता का अनुभव नहीं रखने वाली व चिरकालीन दासत्व जनित हृदय दौर्बल्य से पूज्य स्वतन्त्र-सत्ता पर भय का प्रभाव रखने वाली क्षत्रिय जाति, शासक जाति होने पर भी निद्रावश है और उसके उद्गार निद्रा ही के प्रलाप हैं। नोचेत्, ऐसे उत्तम प्रस्ताव को पास करके और क्षणिक उत्साह बताकर निश्चेष्ट कैसे हो जाती ?

मान्यवर ! और साथ ही आशा करता हूं कि आप इस कर्तव्य कार्य के स्तम्भ रूप बनकर और इनके अन्नजल को सच्चे स्वरूप में उज्जवल करके भारत के आशा-स्थल इस देश में क्षत्रिय जाति के पूर्वकालिक उपकारों के बदला देने रूप स्वामिधर्म इस चेष्टा में नायक रूप बनकर निज के मेम्बर पद का स्वीकार पत्र देकर हमारी आशा के साथ उत्साह को बढ़ाते हुए क्षत्रिय मात्र का हार्दिक धन्यवाद प्राप्त करेंगे क्योंकि आप जैसे नर-रत्न की सहायता कौन नहीं चाहता ? मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अपना उदार भाव प्रकट करके अंगीकार के साथ परम उपयोगी और अमूल्य सम्मति भेजेंगे। यही सब विषय प्रियवर रामनाथ जी साहब रत्नू के लिए भी हैं। उनका भी स्वीकार पत्र और सम्मति भेजावें।

राजपूताना की प्रत्येक रियासतों से एक एक सुयोग्य और प्रभावशाली क्षत्रिय सरदार एवं कतिपय देश कालानुसार उपयोगी और परम आवश्यक अन्य जातीय भी सभ्य चुने जाकर उन सबकी एक कमेटी कायम की जावे और वो कमेटी "क्षत्रिय कॉलिज के महान् उद्देश्य को सर्वांग रूप से सिद्धि पर पहुचाने के लिए भारतवर्ष के विशाल क्षेत्र से विपुल अर्थ संग्रह करने आदि कामों को कैसे छेड़ना, चलाना, नियमबद्ध करना, प्रबन्ध करना आदि सब विषयों पर निर्णय करें। इनमें से एक सेक्रेटरी नियत कर सब कार्यवाही का सेन्टर उसी को माना जाय और सभा उस पर सर्वसम्मत रूप से सत्ता चलावे।

कृपा करके उपरोक्त स्कीम पर आप पूर्ण ध्यान देकर निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर भी प्रदान करें :

1– यह स्कीम ठीक होगी या नहीं ?
2– इसमे ये ही मेम्बर होने चाहिये या कोई अन्य ?
3– इसमें सेक्रेट्री कौन हो ?

मेरे ध्यान मे सब संयोगों को देखते हुए सैक्रेट्री का काम यदि कंवर साहब ऊंकारसिंह जी पलायता को दिया जावे तो सब प्रकार से उचित होना संभव है क्योंकि सेक्रेट्री ऐसा होना चाहिए कि जिनका लिहाज, स्नेह, विश्वास, सर्वत्र असर-कारक हो और कार्य-दक्षता के उपरान्त उनके हृदय मे स्वजाति वात्सल्य

या स्कीम भी बदला हो। ये सब संशोधन और नवीन मेरे ध्यान में उक्त [illegible] पर विशेष रूप से पड़ते हैं। यह मेरी निज की राय है। आप स्वतंत्र राय देने में स्वतंत्र हैं।

आपका उत्तर मिलने पर इस स्कीम के अनुसार कार्यवाही की जायेगी और अन्य सज्जनों को भी निवेदन पत्र भेजे जायेंगे। मुझे आशा है कि इस स्कीम पर अमूल्य सम्मति एवं इसी प्रकार से मान्यवर बा. रामनाथजी साहिब[1] की भी स्वतंत्र सम्मति बहुत शीघ्र मिलेगी।

---

1 श्री रामनाथजी रतनू शेखावाटी के ग्राम चंदपुरा के निवासी थे। वे राजपूताना से उच्च शिक्षा उपार्जन हेतु इंग्लैंड जाने वाले प्रथम व्यक्तियों में से थे। वहां दादाभाई नौरोजी जैसे महान देशभक्तों से उनका सम्पर्क हुआ। सन् 1892 मे उन्होंने "इतिहास राजस्थान" लिखा। वे भूतपूर्व कृष्णगढ़ रियासत में मंत्री एवं सीकर के दीवान भी रहे।

तकनीकी शिक्षा हेतु विद्यार्थियों के जापान भेजने की स्कीम 1908-1909

(राजपूताना एण्ड सेन्ट्रल इंडिया एज्यूकेशन एसोसियेशन[1])

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैवह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

(श्री भगवद्वाक्य)

संसार में मनुष्य का जन्म खाने पीने सोने एवं रीती गल्प-गप्पें हांकने के लिये नहीं हुआ। उनमें भी खासकर जिनको ईश्वर ने वैभव प्रदान किया है उन पर संसार की जिम्मेवारियाँ भी पूरी डाली गई हैं। ईश्वरीय बख्शिश उनको इसलिए नहीं हुई है कि वे केवल अपना पेट उत्तम पदार्थों से आवश्यकता से ज्यादा भरकर डकारें खाया करें, अच्छी सवारियों पर बैठकर इधर उधर अकड़े फिरें, शरीर को चमकीले भूषणों से सजाकर दर्पण में घंटों मुख मरोड़ा करें, नाज नखरों में, निद्रा आलस्य में, प्रमाद नशों में, ईर्ष्या कलहों में, जीवन के दुर्लभ समय को नाहक खोया करें और परिणाम में पैदा हों और मर रहें। परन्तु उनका धन, जन, शक्ति, बुद्धि, विद्या, समय आदि सर्वस्व ही स्वजाति और स्वदेश के लिये होना चाहिये। जिसमें स्वजातीय सत्व अभिमान नहीं, स्वदेश भक्ति नहीं उस मानवकीट पर सहस्त्र धिक्कार हो।

धन्य है वह रण-रसिक राणावत (सिसोदिया राजपूत) कि जो राजपूत रक्त धारा से उमडकर बहती हुई क्षिप्रा नदी के किनारे किसी विपक्षी वीर के इस प्रश्न के उत्तर में कि जिस मेवाड़ और चित्तौड़ को तुम सदा अपने सिर से बंधा हुआ कहा करते थे आज वह तुम्हारी प्रिय भूमि और किला कहां है ?

[1] कुंवर केसरीसिंह की योजना थी कि भारतीय विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये इंगलैन्ड न जाकर एशिया के नवोदित स्वतंत्र राष्ट्र जापान जावें जिससे स्वाभिमान, राष्ट्र गौरव और स्वतन्त्रता के विचार भी ग्रहण कर सकें। उन्होंने इस योजना के सम्बन्ध में भारतीय जापानी कौंसल से भी सम्पर्क किया था।

लोह-घाव से घाबे हुए अपनी ही रक्त-शत धारा से अभिषेक करते हुए, घूमते हुए, उस वीर ने उत्तर दिया और यही उसकी अंतर्ध्वनि थी कि "मेरा देश और किला मेरे साथ है उसे अब भी मैं सिरहाने रखकर सोता हूं"; यह कह कर अपने रक्त से एक मृत्तिका पिंड बनाकर सिर के नीचे रखा और सदा के लिये शिर धर का स्थाई योग करा गया। रंग है उस वीरवर कछवाहे को कि जो आमेर नाम से कल्पित किसी एक शून्य स्थान में गोले गोलियों की बौछार करके उसके कल्पित विजय संवाद से बैर ज्वाला को शमन करने वाले अपने एक वैतनिक प्रभु की राजसभा में अपनी मातृभूमि के नाम संकल्पित स्थान पर होते हुए हमले को देखकर शांत राजसभा को सहसा चकित करता हुआ शस्त्र लेकर उठ खड़ा हुआ और पूछने पर उत्तर दिया कि "जहां कछवाहे हैं वहीं आमेर है, और जहां आमेर है वहीं कछवाहे है। आमेर नाम ही कछवाहे का सर्वस्व है। आमेर पर विजय चाहे वह कल्पित ही क्यों न हो परन्तु जब तक कछवाहे के अंतिम रक्त बिन्दु को युद्ध भूमि न सौंप दें तब तक असम्भव हैं। अतः जब तक मैं हूं तब तक आप आमेर पतन की ध्वनि नहीं सुन सकते।" इतना कहते कहते वह वीर अपनी प्यारी मातृभूमि के नाम से संबोधित उस भूमि में जा खड़ा हुआ और विकराल ज्वाल-जिव्हा को लपलपाती हुई, डकारें खाती हुई भी अनंतप्राणों की भूखी यमराज सहोदरा तोपों को छाती के सामने लेकर तुरन्त ही कई एक कौतूहल प्रिय योद्धाओं को भूमि चाटते कर दिये और सदा के लिए आमेर विजय नाम को वहां से भुला दिया।

कहां तक कहूं ऐसे अनेक वीर रत्नों ने इस भूमि में स्वदेश के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। यद्यपि वे नहीं हैं परन्तु उनका नाम और काम भारत के प्रत्येक परमाणु में गूंज रहा है। परन्तु अब सब बदल गया। भारत का सब बदलते हुए भी एक मात्र जिस पर कि आशा नहीं बदली, जिस राजसिक भूमि के वायुमण्डल ने भारत के प्राणवायु का काम दिया, डूबते हुये महा-पिंड की नासिका रूप जिस देश पर अंतिम दृष्टि आ ठहरी वही यह राजपूताना है। अतः हम भी इधर ही देखते हैं। किन्तु देखते है कि आशा बांधने के समय से और अब से बड़ा अन्तर हो गया, यहां भी सब बदल गया। मृतदेह के समान स्थूलदेह जहां की तहां वैसी ही है परन्तु सब शक्ति शून्य, ठंडा हेम, अचेतन। कर्नल टॉड की बताई हुई दबी आग [राजपूत] अब केवल ठंडी राख की ढेरी ही है और वीर जाति की कूंची [चारण] को भी स्वार्थ जंग खा गया। शुद्ध रत्नों में सग दोष से कलकपट की कालिमा झलक आई, उस पट को उड़ा देने में यद्यपि विद्या बुद्धि की खराद ही समर्थ थी परन्तु कहते तो हैं कि सब बदल गया यहां तक कि

स्वाधीनता में रहने वाले जाति गौरव, देशभक्ति, आत्म-भोग, उदारभाव, प्रेम, शौर्य, स्वधर्म-प्रेम, हृदयबल, ऐक्यभाव आदि जातीय जीवन में प्राण रूप गुण भी ऐसे लुप्त हुए कि ढूंढे नही मिलते। खेद तो यह है कि भारतीय माता का स्थल सबसे पहले तल पेंदे बैठ गया। चारों ओर से अस्पष्ट परन्तु सूर्योदय सूचक मधुर कलरव कानों पर आने लगा, परन्तु यहां तो चारों मंजिल में घोर निद्रा का सन्नाटा है, यदि ध्वनि है, तो केवल घोरने की।

देशी राज्य वास्तव में भारत की अवशेष संपत्ति है, परन्तु इनका प्रमाद दुख हेतु भी है, ज्योंही भारतीय अपने प्रान्त में उच्च प्रजा हक पाने की योग्यता रखने का दावा करते हैं त्यों ही ऊपर की अंगुली हमारी अयोग्यता की ओर उठती है और हमें अयोग्यता का उदाहरण बनाकर साहस का सिर अगत्या नीचा झुका देती है। इससे ज्यादा अपमान और दुख हमारे लिये क्या होगा कि हम "न मरें न माचा छोड़ें"—इस कहावत को प्रत्यक्ष कर रहे हैं। इस सबका कारण केवल अविद्या है। यदि हममें विद्या होती तो हम अपने स्वरूप को कैसे भूल जाते? हमारे घर ही में हम अयोग्य क्यों कहलाते? हमारे देश की प्रजा फटे चिथड़ों में शीत घाम सह रही है, दिन में एक बार राबड़ी पीकर भूख काटकर ज्यो त्यों जीवन बिता रही है, पशुयोनि से भी हीन अवस्था भोग रही है, आह! मानो अत्याचारों को सहने के लिये ही उसका जन्म हुआ है यह सब फटी आंख से देखते हुए भी केवल अपना पेट मिष्ठान से भरकर, चमकीली पोशाक पहिन कर, बग्गी घोड़ों पर बैठ कर मोछें मरोड़ते हुए संसार की बादशाहत अपने ही पैरों नीचे मानते हुए घोर नीच स्वार्थी कैसे बन जाते? राजसिक गर्मी के चले जाने पर शराब और अमल की नकली गर्मी से खून गर्म करके रही सही बुद्धि का भी नाश कैसे कर बैठते? जो जितना नजदीक हो उतना ही ज्यादा उसके साथ द्वेष और क्लेश बढ़ाकर, अपनी शक्ति का अधम उपयोग करके बंधुद्रोही, जातिद्रोही, देशद्रोही का कलंक सिर लेकर जो जितना दूर हो उससे उतना ही ज्यादा प्रेम, सद्भाव बताकर उसीके कैसे बन जाते? देशों की हारजीत को भूलकर काठ की चौपड़ के तड़ाकों में गुल्तान होकर स्वयं चौपट कैसे बन जाते? किसी निर्धन स्वजातीय व सत्कुलीन व वीर को पास बिठाने में, बोलने में अपने तेज का, मान का, प्रभुत्व का ह्रास समझकर वेश्याओं, बांदियों के भ्रष्ट पैरों से अपनी बिछायत घुंदाने मे आनंद कैसे मानते? अनादि से स्वतंत्र शासनकर्ता वीरजाति की वीरांगनायें सौन्दर्य-प्रिया बनकर प्यारी संतान को वीर मातृ-दुग्ध के मधुर स्वाद से वंचित रखकर किसी दासी आदि की गोदी में सौत के छोरे के समान डालकर, उसी के गंदे दुग्ध से, पसीने से, बालक के

कोमल हृदय और धर्म को भिगोकर जन्म ही से गुलामी के संसार में सीकर स्वदेश को कैसे गिरा देती ? सच है जिस देश में विद्या नहीं उसकी दशा यही होना ईश्वरीय नियम है। माँ हमारी भी हुई है। अस्तु, अब तो "बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेहु"।

मान्यवरों ! "निरबीज भूमि कबहू न होय" यह सिद्धान्त आशा दिलाता था कि इस समय भी राजपूताना और मध्यभारत में अवश्य ऐसे देश भक्त नर-रत्न भी होंगे कि जिनका हृदय देश की इस दशा पर उभरता होगा। वह आशा वास्तव में सत्य निकली। इन देशों में आभूषण रूप, दूरदर्शी, विद्याविशारद एवं कार्यदक्ष नर रत्न देश की तीनों अवस्था पर ध्यान देकर इस अटल सिद्धान्त पर आये है कि जब तक स्वदेशी जन नौकरी के अधम संकल्प को छोड़कर, स्वतंत्र निर्वाहक भावना और दृढ़ साहस के साथ विदेश में जाकर विविध प्रकार की उच्च शिक्षा प्राप्त न करें, उन्नत प्रजाओं के सहवास में न रहें, विचार-स्वातन्त्र्य के वायुमंडल में न डोलें, उनके और अपने वास्तविक भेद के जांचने में हृदय दृष्टि के साथ चर्म चक्षु को भी साक्षी न बनालें। संसार की प्रजायें स्वकर्म ही से उन्नत और अवनत होती रहती है। किसी को ईश्वर के घर से शासन का पट्टा नहीं मिलता। यह बताने वाले इतिहास और उनके चेहरों को मिलाकर एक साथ न देख लें, तब तक कोई भी देश उन्नति कदापि नहीं कर सकता।

अतः सबसे आवश्यक और प्रथम कार्य हमारा यह है कि हम अपने देश में से चुने हुए, होनहार नरों को विदेश में भेजकर उच्च शिक्षा दिलाकर देश की उत्तम मनुष्य सम्पत्ति बढ़ावें। मनुष्य-समुदाय के योग्यायोग्य भाव पर ही देश का उद्धार और पतन निर्भर है। परन्तु यह उपाय देशोन्नति के लिये जितना अमोघ महौषधि रूप है उतना ही इस दीन-हीन देश के सामने कष्ट-साध्य भी है कारण कि "जहा चने है वहां चावने वाले नहीं, जहां चबाने वाले हैं वहां चने नहीं" इस कथन के अनुसार यहा जहा अधी लक्ष्मी का कुछ वास है वहा योग्यता और सामयिक ज्ञान का नाम नही और जहां योग्यता है वहाँ उदर पोषण ही कठिन है तो फिर हजारो रुपयो के खर्च से विदेश में जाकर शिक्षा पाना कहाँ सम्भव ? यद्यपि हमारे प्रत्येक नरेश को ईश्वर सद्बुद्धि दें और वे चाहे तो अपनी अपनी तरफ से एक नहीं अनेक जन को जापान में रखकर जापान जैसी ही आदर्शरूप, उन्नत और स्वामिभक्त प्रजा बनाकर सहज में भारत कल्याण के साथ अपने पूर्वजों की जगविख्यात कीर्ति का जीर्णोद्धार कर सकते हैं। ऐसा कोई भी नरेश नहीं कि जिनको यह शिकायत न हो कि क्या करें ! स्वदेश में योग्य मनुष्य नहीं मिलते, परन्तु एक बार अट्टहास करके हँसी उनके इस पश्चात्ताप पर

क्योंकि उनके पास मनुष्य हैं, योग्य बनाने के सब साधन है तथापि योग्य बनाने की चेष्टा नही करते। वह पश्चात्ताप वैसा ही है कि जैसा सब भोजन सामग्री तैयार है और भूखा भूख के दुःख को गा रहा हो। हम प्रजा को क्या योग्यता के लिए स्वयं चेष्टा नही करनी चाहिये। अब "यथा राजा तथा प्रजा" का समय नही है किन्तु समय है "यथा प्रजा तथा राजा" का। अपने उद्धार के लिए दूसरे का मुंह ताकने की आवश्यकता नही। यही रहस्य गीता मे स्वयं श्री भगवान् आज्ञा करते है कि "उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्"।

इन्ही सिद्धान्तों की नींव पर एक "राजपूताना एण्ड सेन्ट्रल इंडिया एज्युकेशनल एसोसियेशन" नामक संस्था रची गई है जो इन दोनों देशो में से होनहार नर-रत्नों को चुनकर उच्च शिक्षा दिलाने के लिये खास नियमो पर, अपने खर्चे से जापान मे भेजेगी। कारण कि जापान ही वर्तमान संसार के सुधरे हुए उन्नत देशो मे से हमारे लिये शिक्षार्थ आश्रयणीय है, वह हमारे साथ देश मे देश मिलाकर, (एशियाटिक बनकर) धर्म मे धर्म मिलाकर, रंग में रंग मिलाकर, दिल मे दिल मिलाकर, अभेद् रूप से, उदार भाव से, हमारे बुद्ध भगवान् के धर्म-दान की प्रत्युपकार बुद्धि से, मानवमात्र की हितकामना-जन्य निःस्वार्थ प्रेम वृत्ति से, सब प्रकार की उच्चतर महत्वपूर्ण शिक्षा भी सस्तो से सस्तो देने के लिये सम्मान पूर्वक आह्वान करता है।

नियम

[1] यह कमेटी पांच छात्र निरन्तर जापान में कायम रखने का प्रबन्ध करेगी।

[2] छात्रों का खर्च जो करीब 500/- रुपये मासिक होता है, वह देगी।

[3] छात्रो की योग्यतानुसार उनका पाठ्य विषय नियत करेगी।

[4] छात्रो को जापान आने-जाने, खाने-पीने, ठहरने आदि का खर्च भी देगी।

[5] उन छात्रों की व्यवस्था व हालत को उचित मार्ग से जांचती रहेगी।

[6] छात्रों को भेजते समय पहिले उनसे बा-जाब्ता नियम स्वीकार कराये जायेंगे।

[7] छात्र को भेजने के पहिले उसका बीमा 4000/- रुपये का कराया जावेगा और उसकी फीस कमेटी उस वक्त तक देती रहेगी जब तक जापान मे रहे। जब वो पास होकर आवें तब से वह फीस उनको देनी होगी।

[8] और तभी से 10/- माहवार कमेटी को कर्ज पेटे चुकाता रहेगा और मूल रुपये जितने उसके लिये कमेटी ने दिये है वो सब इस किस्त से चुकायेगा। यदि रुपये चुकाने से पहिले उसका शरीर न रहे तो कमेटी वे रुपये बीमा कम्पनी की रकम में से ले लेगी। यह शर्त बीमा कम्पनी से प्रथम करली जावेगी।

कोमल हृदय और धर्म को भिगोकर जन्म ही से गुलामी के संस्कार से सींचकर स्वदेश को कैसे गिरा देतो ? सच है जिस देश में विद्या नहीं उसकी दशा यही होना ईश्वरीय नियम है। सो हमारी भी हुई है। अस्तु, अब तो "बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेहुं"।

मान्यवरो ! "निरबीज भूमि कबहू न होय "यह सिद्धान्त आशा दिलाता था कि इस समय भी राजपूताना और मध्यभारत में अवश्य ऐसे देश भक्त नर-रत्न भी होंगे कि जिनका हृदय देश की इस दशा पर उभरता होगा। वह आशा वास्तव में सत्य निकली। इन देशों में आभूषण रूप, दूरदर्शी, विद्याविशारद एवं कार्यदक्ष नर रत्न देश की तीनों अवस्था पर ध्यान देकर इस अटल सिद्धान्त पर आये हैं कि जब तक स्वदेशी जन नौकरी के अधम संकल्प को छोड़कर, स्वतंत्र निर्वाहक भावना और दृढ़ साहस के साथ विदेश में जाकर विविध प्रकार की उच्च शिक्षा प्राप्त न करें, उन्नत प्रजाओं के सहवास में न रहें, विचार-स्वातन्त्र्य के वायुमंडल में न डोलें, उनके और अपने वास्तविक भेद के जांचने में हृदय दृष्टि के साथ चर्म चक्षु को भी साक्षी न बनालें। संसार की प्रजायें स्वकर्म ही से उन्नत और अवनत होती रहती है। किसी को ईश्वर के घर से शासन का पट्टा नहीं मिलता। यह बताने वाले इतिहास और उनके चेहरों को मिलाकर एक साथ न देख लें, तब तक कोई भी देश उन्नति कदापि नहीं कर सकता।

अतः सबसे आवश्यक और प्रथम कार्य हमारा यह है कि हम अपने देश में से चुने हुए, होनहार नरों को विदेश में भेजकर उच्च शिक्षा दिलाकर देश की उत्तम मनुष्य सम्पत्ति बढ़ावें। मनुष्य-समुदाय के योग्यायोग्य भाव पर ही देश का उद्धार और पतन निर्भर है। परन्तु यह उपाय देशोन्नति के लिये जितना अमोघ महौषधि रूप है उतना ही इस दीन-हीन देश के सामने कष्ट-साध्य भी है कारण कि "जहां चने है वहां चावने वाले नहीं, जहां चबाने वाले है वहां चने नहीं" इस कथन के अनुसार यहां जहां अभी लक्ष्मी का कुछ वास है वहां योग्यता और सामयिक ज्ञान का नाम नहीं और जहां योग्यता है वहां उदर पोषण ही कठिन है तो फिर हजारों रुपयों के खर्च से विदेश में जाकर शिक्षा पाना कहां सम्भव ? यद्यपि हमारे प्रत्येक नरेश को ईश्वर सद्बुद्धि दें और वे चाहे तो अपनी अपनी तरफ से एक नहीं अनेक जन को जापान में रखकर जापान जैसी ही आदर्शरूप, उन्नत और स्वामिभक्त प्रजा बनाकर सहज में भारत कल्याण के साथ अपने पूर्वजों की जगविख्यात कीर्ति का जीर्णोद्धार कर सकते हैं। ऐसा कोई भी नरेश नहीं कि जिनको यह शिकायत न हो कि क्या करें ! स्वदेश में योग्य मनुष्य नहीं मिलते, परन्तु एक बार अट्टहास करके हमें उनके इस पश्चात्ताप पर

क्योंकि उनके पास मनुष्य हैं, योग्य बनाने के सब साधन हैं तथापि योग्य बनाने की चेष्टा नहीं करते। वह पश्चाताप वैसा ही है कि जैसा सब भोजन सामग्री तैयार है और भूखा भूख के दुःख को गा रहा हो। हम प्रजा को क्या, योग्यता के लिए स्वयं चेष्टा नही करनी चाहिये। अब "यथा राजा तथा प्रजा" का समय नहीं है किन्तु समय है "यथा प्रजा तथा राजा" का। अपने उद्धार के लिए दूसरे का मुँह ताकने की आवश्यकता नहीं। यही रहस्य गीता में स्वयं श्री भगवान् आज्ञा करते हैं कि "उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्"।

इन्ही सिद्धान्तों की नींव पर एक "राजपूताना एण्ड सेन्ट्रल इंडिया एज्यूकेशनल एसोसियेशन" नामक संस्था रची गई है जो इन दोनों देशो में से होनहार नर-रत्नो को चुनकर उच्च शिक्षा दिलाने के लिये खास नियमों पर, अपने खर्च से जापान में भेजेगी। कारण कि जापान ही वर्तमान संसार के सुधरे हुए उन्नत देशो में से हमारे लिये शिक्षार्थ आश्रयणीय है, वह हमारे साथ देश मे देश मिलाकर, (एशियाटिक बनकर) धर्म में धर्म मिलाकर, रंग में रंग मिलाकर, दिल मे दिल मिलाकर, अभेद् रूप से, उदार भाव से, हमारे बुद्ध भगवान् के धर्म-दान की प्रत्युपकार बुद्धि से, मानवमात्र की हितकामना-जन्य निःस्वार्थ प्रेम वृत्ति से, सब प्रकार की उच्चतर महत्वपूर्ण शिक्षा भी सस्ती से सस्ती देने के लिये सम्मान पूर्वक आह्वान करता है।

नियम

[1] यह कमेटी पांच छात्र निरन्तर जापान में कायम रखने का प्रबन्ध करेगी।

[2] छात्रों का खर्च जो करीब 500/- रुपये मासिक होता है, वह देगी।

[3] छात्रो की योग्यतानुसार उनका पाठ्य विषय नियत करेगी।

[4] छात्रों को जापान आने-जाने, खाने-पीने, ठहरने आदि का खर्च भी देगी।

[5] उन छात्रों की व्यवस्था व हालत को उचित मार्ग से जाचती रहेगी।

[6] छात्रों को भेजते समय पहिले उनसे बा-जाब्ता नियम स्वीकार कराये जायेंगे।

[7] छात्र को भेजने के पहिले उसका बीमा 4000/- रुपये का कराया जावेगा और उसकी फीस कमेटी उस वक्त तक देती रहेगी जब तक जापान में रहे। जब वो पास होकर आवें तब से वह फीस उनको देनी होगी।

[8] और तभी से 10/- माहवार कमेटी को कर्ज येटे चुकाता रहेगा और कुल रुपये जितने उसके लिये कमेटी ने दिये है वो सब इस किस्त से चुकायेगा। यदि रुपये चुकाने से पहिले उसका शरीर न रहे तो कमेटी वे रुपये बीमा कम्पनी की रकम में से ले लेगी। यह शर्त बीमा कम्पनी से प्रथम करली जावेगी।

[9] छात्र को पसंद करने का काम कमेटी का होगा।

[10] छात्र जब पास होकर आवे तब उसके स्वतन्त्र धंधे के लिये कमेटी यथा-शक्ति पूर्ण मदद देगी।

[11] छात्रों में जाति भेद का विचार नही होगा।

[12] इस एसोसियेशन का वही मेम्बर होगा जो कम से कम एक रुपया माहवार देगा।

इसमें दो प्रकार के मेम्बर होंगे, साधारण और मुख्य। साधारण वह होगा जो चार आना से लेकर चार रुपये माहवार तक नियमित रूप से देता रहेगा।

हमारी इच्छा एक "राजपुताना एण्ड सैन्ट्रल इन्डिया एज्यूकेशनल एसोसियेशन" कायम करने की है, उसका प्रारम्भिक कर्तव्य होगा कि इन प्रान्तों से कुछ लड़के जापान में उच्च शिक्षा प्राप्त करते रहें और उनका सब खर्च खास नियमो पर उक्त ऐसोसियेशन से दिया जावे।

निम्नलिखित विषयों में विशेष ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा से आपको परिश्रम दिया जाता है। आशा है कि आपकी सविस्तार अनुभवित व्याख्या हमको अवश्य मिलेगी और इस देश सेवा के कार्य में बहुमूल्य सहायक होगी।

उपरोक्त बातो के अतिरिक्त यदि आप कोई बात इस कार्य के लिये उपयोगी समझें तो कृपा कर लिखें और हमें चिरबाधित करें।

[1] एक लड़के को जापान में उच्च शिक्षा प्राप्त करने मे कितना खर्च करना पड़ता है। उसका सब मिलाकर कितना खर्च होना चाहिये।

[2] जापान मे कहां कहां किस युनिवर्सिटी में कौन कौनसी विद्या मुख्यतः पढ़ाई जाती है और उनकी पढ़ाई मे खर्च का कितना अन्तर पड़ता है।

[3] जापान में एक लड़के को विद्याभ्यास पूर्ण करने के लिये कितने समय तक वहां रहने की आवश्यकता है।

[4] देशी राज्यो में से जापान जाने वाले छात्रो के लिये किन प्रमाण-पत्रों का होना आवश्यक है।

उपरोक्त इबारत निम्नलिखित स्थानो मे भेजी जावे।

[1] जापानीज़ कौंसल, बम्बई

[2] "इंडियन जापानीज एसोसियेशन", जापान, टोकियो

[3] मि. जोगेन्द्रचन्द्र घोष, एम. ए., बी. एल., सेक्रेटरी, ऐसोसियेशन फोर दि एडवांसमेन्ट आफ साइन्टिफिक एज्युकेशन इन इंडिया, कलकत्ता

[4] प्रिन्सिपल, मोहमडन कॉलेज, अलीगढ़

[5] प्रिन्सिपल, एंगलोवेदिक कॉलेज, लाहौर

मि. जोगेन्द्रचन्द्र को यह विशेष लिखना कि उनके यहां जो नियम स्कीम आदि स्थिर हुए हैं हमको देखने को दिये जावें।

शिक्षा-सुधार : एक पत्र[1]

आपने मुझे डेपुटी इन्सपैक्टरी का काम करने के लिये आज्ञा की उस विषय में जो मेरा विचार स्थिर हुआ वो आपकी सेवा में सविस्तार निवेदन कर देना उचित समझता हूं।

मैं सदा यह मुक्त कंठ से स्वीकार करता आया हूँ कि आपने मेरे साथ जो स्नेह और गुण ग्राहकता प्रकट की है और कर रहे हैं मैं उसके लिये चिर आभारी हूँ। कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं आप ही का स्वीकृत हूं। मैं इसके बदले मे यदि आपकी सेवा करके उऋण होने की आकांक्षा रखता रहूँ तो कोई नई बात नही। मैं यह भी जानता हूँ कि आपने जो मुझे सच्चे दिल से आपका बनाया वो केवल स्वामि-सेवा के लिए—क्योंकि आपका निज का काम और श्री दरबार का काम दो नहीं है और यहां सद्भाग्य से राज-सेवा और राज्य-सेवा में विशेष अन्तर नहीं है। अतः मैं राज्य-सेवा से पीछे हटूं तो कृतघ्न व दोष का भागी हो सकता हूँ परन्तु मैं अपने सिद्धान्त से विरुद्ध चलने को भी आत्मघात समझता हूँ। अतः अपने आप राज्य-सेवा में सिर घुसाने की स्वार्थी चेष्टा को बुरी समझने से अलबत्ता अभी तक कभी किसी प्रकार की सेवा को सिर पर लेने की चेष्टा नहीं की-यह आपको स्वयं मालूम ही है। अब यदि आप आज्ञा करते हैं तो मेरा धर्म है कि मैं उसे स्वीकार करने के पहिले अपने सिद्धान्तों को आपकी सेवा में निर्भय प्रकट कर दूं और फिर आज्ञा शिरोधार्य करूं। वे सिद्धान्त दूसरे पत्र में देता हूँ। मान्यवर, सब तरह से आपकी आज्ञा पालन को मैं मेरा धर्म समझता हूँ और आपके हाथ के नीचे काम करने को सौभाग्य समझता हूँ। इस सबका कारण आपका सच्चा स्नेह और मेरा यह विश्वास कि लौकिक पक्ष में आप मुझे उसी मार्ग पर चलावेंगे कि जो मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ होगा।

---

1 1905 मे कोटा राज्य काउन्सिल के मेम्बर रायबहादुर लाला शिवप्रताप ने कुंवर केसरीसिंह को शिक्षा विभाग में डिप्टी इन्सपेक्टर बनाने के लिये पत्र लिखा था। उनके पत्र के उत्तर में कुंवर केसरीसिंह द्वारा दिनांक 10-2-1905 को भेजे गये पत्र मे व्यक्त विचार।

1. देश की उन्नति और अवनति जिसके बुरे और अच्छे होने पर निर्भर है उस-"विद्या विभाग" को देशी राज्यों में प्रायः रद्दी विभाग समझा जाता है अतः उसके लिये किये गये परिश्रम और बनाये गये मार्गों पर दुर्लक्ष्य किया जाता है वैसा न होकर आयन्दा इस विभाग की वास्तविक महत्ता और परम उपयोगिता स्वीकारी जाकर इस पर उदार और स्थाई दीर्घ दृष्टि डाली जावे ।

2. विद्या विभाग की नवीन व्यवस्था ऐसी की जावे कि जिसको राजपूताना के प्रत्येक राज्य के लिये उदाहरण रूप मानी जा सके ।

3. उस नवीन व्यवस्था की सामग्री के रूप में अभी तक बड़ौदा, मैसोर और ट्रावन्कोर आदि शिक्षा के लिये सुप्रसिद्ध देशी राज्यों के विद्या-विभागों की व्यवस्था का अनुभव प्राप्त करने के लिये एक योग्य डेपुटेशन उधर भेजा जावे और परिणाम में उससे यहा के लिये कर्तव्य सिद्धान्त माँगे जावें ।

4. पाठ्य प्रणाली-का मूल सिद्धान्त लोगों को केवल सेवावृत्ति के योग्य बनाने का ही नहीं किन्तु देशभक्त, सच्ची और स्वतन्त्र, उद्योगी प्रजा के बनाने का होना चाहिये ।

5. वर्तमान पाठ्य प्रणाली को बदलनी चाहिये । प्रजा को अपने राज्यकर्त्ता के कठिन राज्य कार्यों का रहस्य जानने और उन पर जिस शैली से काम किया जाता है उस शैली के यथार्थ स्वरूप को पहचानने एवं राज्य नियम, अधिकारियों की अधिकार सीमा और प्रबन्ध सिद्धान्त आदि को समझने योग्य बनाने के लिये नवीन पाठ्य प्रणाली ऐसी स्वतन्त्र निर्माण की जावे कि जिससे प्रजाजन थोड़े परिश्रम से राज्य-धर्म और प्रजाधर्म एवं कृषि । शिल्प, वाणिज्य आदि की शिक्षा प्राप्त करके शीघ्र ही स्वदेश के उपयोगी बन सकें ।

6. सब स्कूलों के मास्टर उच्च शिक्षा प्राप्त होने चाहिये और उनके लिये स्थायी स्थानीय कर्त्तव्य भी स्थिर किये जावें ।

7. स्कूलों की संख्या बढ़ाई जावे ।

8. राज्य की आमद पर कम से कम प्रति रुपये पर तीन पाई के हिसाब से एज्यूकेशन फी डालकर विद्या-विभाग की स्थाई आमदनी स्थिर की जावे

और राज्य में उस समय जो रकम खर्च की जाती है वह भी शुल्क रहे-पानसाई आमद के सिवाय जागीर आदि की आमद पर भी यह नियम स्थिर किया जावे।

9. विद्या-विभाग से उत्तीर्ण माने गये छात्रों की उचित सहायता राज्य से दी जावे।

10. विद्या के लाभ और आवश्यकता प्रजा के दिल में जँचाने के लिये सुयोग्य व्यक्तियों को थोड़े समय तक देहात में उपदेशक के रूप में फेरे जावें।

11. खालसे की प्रजा के अलावा बाकी जागीर आदि की प्रजा, जो कि राज्य का ही एक भाग है, वह भी राज्य की प्रजा ही है, उसको भी राजकीय विद्या विभाग से संकलित कर देने का उचित मार्ग लिया जावे।

12. शिक्षा सुधार में धीरे-धीरे की नीति का सर्वथा त्याग किया जावे क्योंकि हमारे राजपूताना के देशी राज्यों में प्रजा शिक्षा के विषय में भारत को अन्य प्रजाओं से भी बहुत पीछे रह गई है और रहती ही जाती है। अतः यदि तेज गति से उस अन्तर को न मेटा जायगा तो लाखों मनुष्यों को पशु बना देने का घोर अपराध भारत के वर्तमान इतिहास में फौलादी लेखनियों से एक हरफी राज्यसत्ता के शिरपर रखा जाना सम्भव है।

विचार बिन्दु

विचार-बिन्दु

[क्रांतिकारी ठाकुर केसरीसिंह द्वारा अपनी कनिष्ठ पुत्री एवं जामाता के नाम लिखे गये कतिपय पत्र यहां दिये जा रहे हैं। ये पत्र सुन्दर भाषा में कलात्मक रुचि एवं उच्च विचारों से लिखे गये हैं। इनमें व्यक्त आदर्श विचारों का प्रभाव तथा आकर्षण आज भी वैसा ही है जैसा कि लिखने के समय था। ऐसे ही पत्रों की भाषा को देख कर मनीषी स्व. सत्यदेव विद्यालंकार कहा करते थे कि ठाकुर साहब की भाषा औपनिषदिक है। लगभग आधी शताब्दी बीतने के बाद आज भी दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीति का कैंसर भारतीय समाज को खाये जा रहा है। तत्कालीन स्थितियों में ठाकुर केसरीसिंह द्वारा इस प्रकार के समाज सुधार संबंधी विचार एवं व्यवहार निस्संदेह ही उनके क्रांतिकारी साहस और विवेक के प्रतीक हैं। वर-वधु के लिये लिखे गये पत्र को पढ़ने से तो एक अजीब आनन्द एवं प्रेरणा की अनुभूति होती है। ठाकुर केसरीसिंह न केवल कन्या-शिक्षा के पक्षपाती थे अपितु वे पुत्र की भांति पुत्रियों को भी स्वाभिमान एवं देश भक्ति की भावनाओं से ओतप्रोत देखना चाहते थे।]

दहेज के पत्र : जामाता के नाम[1]

जोधपुर
17-5-1928

वह लक्ष्मीपति इस जोड़ी को चिरायु और सुखी करें ।

दो शरीरों के हृदय एक होकर वेद के महान् मंत्रो "संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानता" "सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै" का प्रत्यक्ष अर्थरूप हो जायें ।

दो प्राण एक होकर इन्द्रिया, मन और बुद्धि पर पारस्परिक अधिकार करके अद्वैत सिद्धान्त को पुष्ट करें ।

दोनो ही शरीर परस्पर प्रियतम होकर सच्चे विश्वस्त मित्र होकर, एकात्म होकर, पवित्र सुखमय गार्हस्थ्य जीवन के आदर्श हो जायें ।

दोनों ही के भाव स्वार्थ कलंक से दूर रह कर परम उदारता की दिव्य धारा मे प्रवाहित हो । लोक-सेवा में ही जीवन की उज्ज्वल ज्योति दिखावें ।

यही उस भक्तवत्सल विश्वपति से अभिलषणीय है । यही भावना है । यही आन्तरिक हृदय की एक मात्र कामना है । यही प्रेम पूर्ण आशीर्वाद है ।

निर्धन की निधि, मेरे प्यारे जामाता !

इच्छा होती है कि अब आप गार्हस्थ्य जीवन मे कदम रख रहे हैं, जीवन के नवीन पाठ पर पहली अंगुली रख रहे हैं ठीक उसी समय अपने अनुभवों को कुछ न्यौछावर करूं । मेरा कर्तव्य भी यही है । आप इनको ध्यानपूर्वक मनन करें और हृदयंगम करके व्यावहारिक रूप से स्वीकार करें । चाहता हूं ये भाव आपके निज के हो जायें ।

1. जामाता श्री जयकर्ण बारहठ एवं पुत्री श्रीमती सौभाग्यमणि को जोधपुर मे दि. 18 मई 1928 को सम्बोधित किये गये दोनों पत्र । ठाकुर साहब ने अपनी पुत्री को दहेज स्वरूप यही पत्र दिये थे ।

बहुत सी ऐसी बाते है कि जो न गृह-संस्कारों में मिली होगी, और न युनीवर्सिटी की अंतिम डिगरी की पाठ्य पुस्तकों में पाई जावेगी, ये वाक्य मेरे दीर्घ अनुभव के निचोड़ हैं। अभी तर्क को दूर रखकर स्वीकार करलें, फिर जब मिलना हो तब तर्क की कसौटी पर भी कस सकते है ।

प्रिय, बातें बहुत सामान्य हैं परन्तु परिणाम बड़ा सुन्दर होगा । पिता, अपनी पुत्री को जब किसी के हाथों मे सौपता है तो अवश्य ही वह सेवा के लिये देता है, परन्तु सेवा और दासत्व में भेद है। एक सात्विक है दूसरा तामसिक। एक दैवी है दूसरा आसुरी।

जो अर्द्धांगिनी है, पति प्राणों की अधिष्ठात्रि है, वह सेविका के साथ साथ ही सच्ची मित्र है। उसकी प्रतिष्ठा और प्रसन्नता में भावी सन्तान के भविष्य की उज्ज्वल रेखा है।

पति पत्नी के परम सुखमय दिव्य व्यवहार का दृश्य मेरी संतान की आखों मे है, उन्ही से पूछ लें। मैंने सौभाग्य की माता को कभी "तू" नही कहा "रेकारा" देता ही कैसे जबकि मैं उनके भाई संबंधियो से "आप" कहकर पुकारता हूं मेरी पत्नी होने ही से उनकी जन्म-सिद्ध प्रतिष्ठा क्यो चली जायेगी ? जो सिर पैरो मे गिरता है उसे सप्रेम आलिंगन देने में महत्व है न कि उस पर पैर रख देने मे। मैं जितना कर सकता था उतना शायद आप न कर सकें क्योकि मैं उनको आप कहता था तथापि "तुम" "थें" से नीचे न उतरे। यह मैंने इसलिये लिखा कि वर्तमान मूर्ख चारण जाति में स्त्री को जूतों की जगह पर मानने की क्षुद्र भावना है। डंडे से खबर लेते लज्जा तक नही आती। उनका "जी" कहने से जी निकलता है। ताजीम, पेशवाई की तो बात ही कहां ? किन्तु मेरे घर में यह सब था "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:"। यही शास्त्र आदेश है।

अभी दोनो हृदयों के पारस्परिक परिचय मे कुछ काल लगेगा । दोनो ही एक होने की चटपटी मे पड़ेंगे उसकी बाधाओं पर व्याकुल होगे। कभी कभी ऐंचातानी भी हो सकती है। परन्तु सबके मूल में रहेगी ऐक्य स्थापन की दिव्य भावना। अतः बहुत शान्ति, धैर्य और क्षमा से काम लीजिये। प्रेम ही सच्ची विजय की कुंजी है। परन्तु प्रेम पर भी पहरा रखने की आवश्यकता है। अर्थात पत्नी का हृदय परिवार के किसी अंश से संतप्त हो जाय तब वह पति चरणों के आश्रय में शान्ति पाकर क्षण ही मे पुनः प्रफुल्लित होता रहे किन्तु वह चरण-कृपा उसे कही गर्वित न बनादे। आपकी योग्यता के सामने सौभाग्य फीकी है। उसे अपने रंग मे रंग कर समान आसन दीजिये। स्त्री का सच्चा गुरु पति ही होता है। यही काम आपको करना होगा।

प्रेम प्रकाशन की विधि प्रारम्भ ही से ऐसी सामान्य होनी चाहिए कि उसमे उत्तरोत्तर बढ़ने का स्थान रहे । उसी मे सुखमय भविष्य है । प्रारंभिक " अति " का अमसानिया वेग कम होकर जब व्यवहारिक उचित सीमा पर आता है तब पत्नी को यह प्रतीति होने लगती है कि वैसा प्रेम न रहा । यह भावना स्थिर प्रेम का महत्व नही समझने देती और व्यर्थ ही दुख की हेतु होती है । अत: प्रारम्भ में प्रेम प्रदर्शन की अति न हो ।

निर्दोष तो एक परमात्मा है । कौन शरीर धारी है जिसमें दोष नही । अत: मित्र के दोष, क्षमापूर्वक आलिगन से ही मिट सकते है । आखों की उदासीनता ही प्रेमी के लिये असह्य दंड है, लताड़ नही । मौन ही भर्त्सना है, कुवाक्य नही ।

सारांश, स्त्री को अपने हृदय के अनुकूल बनाना पति के हाथो मे है । पिता केवल पुत्री को सामान्य क्षेत्र तैयार कर सकता है । जैसा क्षेत्र पति को मिले वह इच्छानुसार बीज बोवे और फसल लुणे । पाश्चिमात्य मे क्षेत्र के अनुरूप ही क्षेत्रज्ञ ढूंढा जाता है आर्य परिपाटी क्षेत्रज्ञ के उपयोगी क्षेत्र तैयार करती हैं । यही भेद है । पति यथेच्छ विधाता है । परन्तु सुगम सिद्धि तब ही होगी जब कि प्रथम मिलन के समय से ही इधर ध्यान दिया जाये ।

मेरे घर में जमाई से पर्दा नही होता क्योंकि जमाई पुत्रवत् है । परन्तु यदि आप प्राचीन रूढ़ि संस्कार चाहेंगे तो होगा, न चाहेंगे तो न होगा । आपकी इच्छा पर है । मैं पर्दे का कट्टर भक्त नही हूं क्यो कि उसके आवश्यकता की उचित सीमा को पहचानता हूँ ।

आज से ही आप मेरे परिवार के प्यारे अंग है । हमारा सुख-दुख, हानि-लाभ, यश-अपयश, मान-अपमान आदि सब एक है । किसी रूप में लिहाज व दुराव को स्थान नही । सामान्यत: बेटी का बाप हीनता वाचक शब्द माना जाता है किन्तु मुझे उसमें गौरव है क्योंकि बेटी की बदौलत ही आज आप जैसा पुत्र मिला ।

यदि जिज्ञासा होगी तो शेष फिर कभी कहूंगा । आज इतना ही बस ।

मेरा प्रेमालिगन स्वीकारिये । मैं आप जैसे रत्न को पाकर धन्य हूं । मेरी सौभाग्य का भाग्य प्रबल है । उसको आपके हाथ में सौंप कर सदा के लिये निश्चित हूं ।

मैं हूं
आपका मंगलाकांक्षी
केसरीसिंह

दहेज के पत्र : पुत्री के नाम

जोधपुर
दिनांक 17-5-1928

मेरी प्रिय पुत्री सौभाग्य !

यह मत समझना कि दाता[1] ने मुझे ऐसा अमूल्य धन दिया है जिसके बराबर वर्तमान समस्त चारण जाति में कोई नहीं। बेटी ! मेरी क्या सामर्थ्य यह उस दीनबन्धु जगन्नियंता ही की कृपा है जिसने तेरे मातृ-गर्भ में आते ही इस संयोग की लिलाट-रेखा खींच दी थी। वही सच्चा दाता है। आओ ! हम उसी के चरणों में सर झुकावें।

प्यारी बच्ची ! नवीन संसार में पाँव रखती हो, इस समय दो शब्द कहना मेरा धर्म है। इन शब्दों को पूर्णतया हृदयगम कर लेना।

पति-पत्नी का सुन्दर और सुखमय व्यवहार तेने अपनी आंखो से माता पिता के जीवन में देखा है, उसे स्मरण रखने से ही तुम्हारा जीवन सदा सुखमय होगा—उसी का सार यह है।

तेरा हृदय और शरीर प्रतिक्षण सेवा में लगा रहे आंखें उन्हीं पर चिपटी रहें। तुम दोनों के प्राण एक हो जायें तेरा कल्याण इसी में है कि अपने पतिदेव के अनुरूप ही तेरा हृदय हो जाय। उनकी कल्याण-भावना में लीन हो जाय उसी एक शरीर में अपना सर्वस्व समझें। तेरे लिए ईश्वर, धर्म, तीर्थ, तप जो कुछ भी है— वे ही हैं।

वह दिन सुखमय होगा जिस दिन बिना कहे ही उनकी इच्छा तेरे हाथों से कार्य रूप में दिखाई देगी। नोचेत, आज्ञा में तो पशु भी चल सकता है। यह तब ही होगा जब उनके हृदय को खूब ही जान चुकोगी उसे जानने के लिए हृदय के कपाट तभी खुलेंगे - जब अपने आपको सर्व प्रकाश से उन्हीं के चरणों में अर्पण कर दोगी।

वे तेरी चाहे जितनी प्रतिष्ठा करें, तू अपने आपको सदा सेविका ही समझना। केवल शारीरिक सेवा नहीं, उनको पुण्य पथपर दृढ़ रखना, पाप पंक से बचाना। उनके यश को उज्ज्वल रखना भी तेरा कर्तव्य होगा। वे विद्वान हैं, स्वयं ही पवित्र रहेंगे तथापि तुझे सदा जाग्रत रहना ही होगा।

खूब सावधान! तेरी सुख भोग की वृत्तियां उन पर भार न हों। कृत्रिम सौन्दर्य की आवश्यकता नहीं उनकी आखें जैसा पसन्द करेंगी वैसा सौन्दर्य तुझे दे देंगी। अपने लिये कुछ न चाहो। क्यों कि आत्म-समर्पण कर देने पर अपना कहने को बाकी कुछ नहीं रह जाता है।

दिन में दोनों ही समय (सायं-प्रातः) नवीन वस्त्र पहिनते पर, माथा नहाकर स्नान करने पर, प्रत्येक विशेष प्रसंग पर घुटने टेक कर पति चरणों में ललाट लगा कर प्रणाम करना कभी मत भूलना। यही व्यवहार श्वसुरालय में पूज्य जन के साथ होना चाहिये। तेरे भाग्य में सब ही अच्छे से अच्छे हैं। उनका प्रेम सम्पादन करना तेरा काम है, वह होगा नम्रता से, सेवा से, उनके हृदयानुकूल बनने से, सत्य पर दृढ़ रहने के विनीत संकल्प से, सदाचार से, सच्चे प्रेम से, उन्हें पूर्ण सम्मान देने से।

बेटी! सावधान! ओठों पर सदा ताला रखना, जिह्वा को सदा वश में रखना, यह जिह्वा स्वाद-रस से और लपलप ध्वनि से रोग कलह और बरबादी में ले जाती है। केवल पति-विनोद में ओंठ खुल सकते हैं, किन्तु वहां भी किसी की निन्दा में कदापि नहीं, चाहे सत्य ही हो। जितनी सहिष्णुता और मितभाषण रखोगी उतनी ही शांति रहेगी।

यह गुण उदार स्त्रियों में ही पाया जाता है, कि वे दूसरों को अच्छा खिला कर प्रसन्न होती हैं, खुद खाकर नहीं। वह गृहिणी धन्य है जिसके द्वार से कोई भूखा प्यासा न लौटे, प्रत्येक व्यक्ति अपने दोष पर जिससे क्षमा की आशा रखे, कोई भी दुखिया आश्वासन का आश्रय पाकर शीतल हो।

कानों पर खूब काबू रखो। वे किसी की बात सुनने के लिये न दौड़ें, किसी की घसपुस में साथी न माने जायें। सारांश, हाथ पैरों को कार्य में लगाये रख कर जबान और कानों पर पहरा रखोगी तो जीवन शान्ति सुख से बीतेगा।

प्यारी बच्ची! अतः अपने जन्म दाता पिता को भूल जाओ, उसका कार्य समाप्त हो चुका। अब तो तेरे लिये वही पूज्य हैं, वे ही सेव्य हैं। वे मादृत

हैं जो पति देव प्राप्त हैं। सेवा मे दो दिन की दौड़ धूप दिखाने से काम नही चलेगा। यह तो आजीवन व्रत है। अतः परम शान्ति, धैर्य, सहिष्णुता और आनन्द से, फल की इच्छा छोड़कर साधन करते रहना और सेवामें थक कर के भी सदा प्रसन्नचित्त रहना।

घर की सेवा तो सब ही करते हैं परन्तु सच्चा सेवा धर्म यह है कि पड़ोस और ग्राम का कोई कुटुम्ब व घर ऐसा न छूटे जिसमे तेरी सेवा की छाप न लगी हो, फिर वह चाहे किसी जाति या स्वभाव का क्यों न हो। देश सेवा मे प्राण निछावर करने वाले, वर्तमान भारत के प्रसिद्ध क्रांति-वीर कुंवर प्रताप[2] को नित्य स्मरण करके प्रणाम करो। वह स्वर्गीय तेरे प्राणो मे सेवा बल देगा, क्यों कि तू उसकी प्यारी सहोदरा है।

तू ऐसे उज्ज्वल प्रदीप्त रत्न के सामने पहुंच गई कि तेरी योग्यता फीकी मालूम होती है। सेवा और प्रेम की खराद पर चढ़ कर अपने आपको एवं पिता की प्रतिष्ठा को भी परम उज्ज्वल बनाईं। यही पितृ-सेवा की अमूल्य भेंट समझूंगा। प्रत्येक बात में अपनी माता का आदर्श सामने रखना। वो भारत प्रसिद्ध वीरांगना थी, वीर पत्नी थी, वीर माता थी, उनका दिव्य आशीर्वाद तेरे जीवन को यशस्वी बनायेगा। उनका भौतिक शरीर नहीं है तथापि वे मेरे हृदय मंदिर में बैठी हुई हैं प्रतिक्षण प्रत्यक्ष हैं, यह सब उन्होंने ही मेरे हाथो से लिखा कर अपना मातृ-कर्तव्य किया है।

बस, आज इतना ही, शेष फिर कभी। किसी शब्द के समझने मे त्रुटि रहे तो अपने पतिदेव से पूछ लेना- वे समझा देंगे। अब यह काम उन्ही का है।

यह जगत पिता इस जोड़ी को सदा सुखी और चिरायु करें, मेरी प्यारी सौभाग्यमणि का सौभाग्य अचल हो।

मैं हूं
तुम्हारा वल्लभ पिता
केसरीसिंह

---

1 परिवार मे ठाकुर साहब को परिजन इत्यादि सभी दाता कह कर ही सम्बोधित करते थे जैसा कि प्रायः राजस्थान में प्रचलन है।

2 अग्रज अमर शहीद कुं. प्रताप सिंह।

शिक्षा (पुत्री के नाम)
(I)

प्यारी सौभाग्यमणि,

तुम्हारे लिये तुम्हारी माता[1] का दिव्य जीवन ही आदर्श है ।

पुत्री ! यदि जीवन को सुखमय और यशस्वी बनाना हो तो ध्यान से निम्नलिखित बातों को बार बार पढो, खूब समझो और व्यवहार में लाओ ।

सच्चा गार्हस्थ्य-सुख सम्प में है, सम्पदा में नहीं । सम्प वहां है जहां शील (उत्तम चरित्र और उत्तम स्वभाव) है, संतोष है, क्षमा है, उदारता है, एकता है सहिष्णुता है और सेवा-धर्म प्रधान है । सम्प वहां टूटता है जहां आचरण में दोष हो, स्वार्थ (सिर्फ अपने ही सुख की चिन्ता) हो, धन की प्रबल कामना हो, कृपणता हो, फिजूल-खर्ची हो, दूसरो पर विश्वास न हो, अपने रूप और गुण पर मिथ्या अभिमान हो, कृतघ्नता हो, दुख ही दुख की भावना हो, आत्म-प्रशंसा हो, पीठ पीछे निन्दा (चुगलखोरी) हो, क्रोध हो, दोष ही देखने की आदत हो, कानाफूंसी हो, आलस्य हो, ईर्ष्या हो पक्षपात हो, मिथ्या भाषण हो, भाषा मे कटुता हो, छिपकर बात सुनने की आदत हो, दूसरो की चीज को अपने काम में ले लेना परन्तु अपनी चीज को दबाये रखना हो तुनक-मिजाजी हो, जबान में दृढ़ता न हो, दूसरे के परिश्रम को प्रमाद से बिगाड़ डालना हो, अपने दोष और अपराध को स्वीकार न करना । हो, हठ हो, अहसान करके कह बताना हो, प्रेम का अभाव हो, जरा-जरासी बात को बढा कर कहने की आदत हो ।

सदा सावधान रहकर उपरोक्त दोषो से बचो ।

वह जीवन सुखी है जिसमे –

1. मैत्री 2. करुणा 3. मुदिता 4. और उपेक्षा, इन चार बातो का अभ्यास हो।

मैत्री – किसी को भी किसी प्रकार से सुखी देख कर अपने मन में सुखी होना और यथा शक्ति दूसरों को सुखी करने की चेष्टा करना ।

करुणा – किसी को भी किसी प्रकार से दुखी देख कर अपने मन में दुखी होना और यथा शक्ति दुखी के दुख को मिटाने की चेष्टा करना।

मुदिता – किसी के सत्यकार्य को देखकर प्रसन्न होना, उसके उत्साह को बढ़ाना, उसमें यथा - शक्ति सहायता देना।

उपेक्षा – किसी के कुकर्म को देखकर मुंह फेर लेना, निन्दा में भाग न लेना, कुसंग से सदा दूर रहना। पाप की बातों को सुनने की इच्छा न रखना।

किसी स्नेही को सुधारना चाहो तो उसके दोष सबके सामने मत कहो, एकान्त में प्रेम पूर्वक समझाओ। जो दूसरों के दोष छिपा सकता है वह संसार को वश में कर सकता है।

सत्य बोलना चाहो तो कम बोलने का अभ्यास करो।
जिससे स्नेह चाहते हो उससे हृदय छिपाकर मत रखो।

पूज्य और आप्त जनों की कृपा और आशीर्वाद चाहते हो तो बिना आलस्य सेवा करो और आज्ञा पालन करो। सम्मान वही पाता है जो दूसरों को सम्मान देता है।

सती और वीर नारी अपने धर्म की रक्षा स्वयं ही कर सकती है, जो अबला बन कर अपनी लज्जा दूसरों के भरोसे पर रखती है वह धोखा खाती है। सिंहनी की ओर शृंगाल आंख नहीं उठा सकता, सिंहनी को सिंह के पहरे की जरूरत नहीं।

स्त्री पवित्र रहने में पुरुष से भी अधिक शक्ति रखती है। बलवान से बलवान पति भी सती पर विजय नहीं पा सकता।

धर्म के ढोंगियों से दूर रहो, वे फूलों में छिपे हुए सांप है, शरबत में मिला हुआ जहर है।

घर घर घूमने वाली, हँस हँस कर घर का भेद पूछने वाली बुढ़िया जब माता और सास से भी ज्यादा प्यार बतावे तो समझो कि वह कुटनी है, वही सच्ची डाकिन है, उसे चौड़े धुत्कार दो।

पुरुष की अपेक्षा स्त्री की आंख बहुत चतुर होती है।

जो स्त्री अपने आपको पुरुष मात्र की भोग्या समझती है, वही पर्दे में अधिक छिपती है। ऐसी झूठी लज्जावतियों पर ही पुरुषों का काबू चलता है। पति के मित्रों का सम्मान करो परन्तु निज के व्यवहार में उनसे तटस्थ रहो। उनसे बोलना ही पड़े तो बहुत थोड़ा और गम्भीरता से, हँसते हुए कभी नहीं। पति के सिवाय अति विश्वास किसी का ठीक नहीं। प्रत्येक कार्य को अधिक से अधिक सुन्दर करने की इच्छा रखो।

बिना पवित्रता के निर्भयता नहीं, बिना निर्भयता के शांति नहीं, बिना शांति के सुख नहीं। ईश्वर पर विश्वास रखना सीखो, जो उस पर विश्वास रखता है वह निराशा का दुःख नहीं उठाता।

[समय सन् 1930]

तुम्हारा
दाता

---

(1) मातुश्री माणिक कुंवर

विचार (पत्र)

(I)

प्यारी बच्ची[1] !

माता-पिता के पवित्र संस्कारों से तुम्हारे हृदय में जन्म-भूमि भारत-माता के लिए जो प्रेम की पवित्रता चिनगारी जगी है उसे बुझने न दो।

क्षणभंगुर रूप, यौवन, देह, सम्पत्ति और सुख-विनोद, जो प्राणी मात्र के लिए सामान्य बात है, उसे दुर्लभ समझने के भ्रम में न पड़कर आत्मा को ऊंची उठाओ। वह मार्ग निष्काम प्रेम का है। उसे किसी एक डिबिया में बंद कर देने से सड़ांध देने लगता है। उसके लिए कम से कम स्वदेश का घेरा तो होना ही चाहिए। वह जीवन में अलौकिक मस्ती भर देता है। यह झांकी तुम्हारे ही घर में तुम्हारे ही सहोदर[2] ने बताई और आज वह भगत[3] का मुस्कराता हुआ चेहरा बता रहा है।

मेरे लिए पुत्र पुत्री में भेद नहीं। आत्मा में जाति भेद कहां? प्रताप की सहोदरा चाहे अधिक न करे परन्तु स्वदेश प्रेम को हृदय में पोषण तो दे ही सकती है। जो सहस्त्रमुखी संसार का मुख ताकता है वह कुछ नहीं कर सकता। अपनी आत्मा की अन्तर्ध्वनि सुनने की चेष्टा करो और फिर वह कहे उसी को मानो। वही सब गुरुओं का गुरु है। उसकी ध्वनि प्रत्येक अंतःकरण में उतरती है किन्तु स्वार्थ की हिलोरें नहीं सुनने देती। ब्रॉडकास्टिंग को सिर्फ दिल्लगी के लिए मत सुनो - सुनकर सोचो, दूर-दूर से शून्य में ही सब आ रहा है। फिर आत्मा तो बहुत पास है। खूब प्रसन्न रहो और एक सुप्रसिद्ध वीरांगना बनो।

(समय, सन् 1929)

---

1. अ. सौ. सौभाग्यमणि देवी, कनिष्ठ पुत्री
2. अमर शहीद कुंवर प्रतापसिंह।
3. शहीदे आज़म भगतसिंह।

विचार बिन्दु

मोटी मोटी बातें

(जिन पर तुरन्त ही चलना चाहिए)

(II)

[शिक्षात्मक निम्न पंक्तियां ठाकुर साहब श्री केसरीसिंहजी ने अपनी कनिष्ठा पुत्री सुश्री सौभाग्यमणि देवी को गार्हस्थ्य प्रवेश पर लिखी थीं।]

वाणी और शरीर की चंचलता रोको। हंसी होठों के बाहर न निकले। हर बात में गंभीर रहना, गंभीर रहने का मतलब सुस्ती और मुंह चढ़ाये रहने से नहीं है। सदा प्रसन्न-चित और प्रसन्न चेहरे से रहते हुए गंभीरता को निभाना। दूसरे की बात को पूरे धैर्य से सुन लेना और फिर सोच कर थोड़े में उत्तर देना। सबका सम्मान करना परन्तु अपने आप को तुच्छ न समझना। हर एक बात जैं जैं[1] से या माताजी से या ज्येष्ठा से पूछ कर करना। शान्ति से सब की बात सुन लेना। परन्तु अपनी बात सुनाने की चटपटी नहीं रखना। दूसरे रावले वालों से बात बहुत कम करना। ज्यादा ध्यान गृह में रहे।

माताजी का शरीर बीमार मिले तो उनकी सब सेवा अपने सिर ले लेना। उनकी सेवा के आगे पति सेवा भी ढ़ीली छोड सकती हो। माताजी का सदा सम्मान करना।

जैं जैं के सम्मान का पूरा और निरन्तर ध्यान रहे। वे जो कुछ कहे उसे नम्रता पूर्वक ध्यान से सुनना और नम्रता से उत्तर देना। सुनने और उत्तर देते समय दूसरा काम न करना।

जिस सत्य उत्तर देने से नाराजगी होने का ख्याल हो तो कह देना कि उत्तर पीछे दूंगी। जब क्रोध न हो तो नम्रता से सत्य समझाना। बहम नहीं करना। परन्तु खुश करने के लिए आत्मा के विरुद्ध व झूठ न बोलना; पूछने पर

बिलकुल चुप हो जाना भी ठीक नहीं। हर एक बार बिना आज्ञा पाये समान आसन [पलंग आदि] पर न बैठो। उठने बैठने में भी सम्मान रखना। कही हुई बात को न भूलो। शरीर वस्त्र की सफाई तो सदा रखना, मलिन वेश से उनके सामने कभी न जाना। प्रेम प्रकट किया जाय परन्तु बचपन के माफिक चेष्टा से नहीं। उसमें भी गंभीरता जरूर रहे। उनकी रुचि को देखकर व्यवहार किया जाय। वे भीतर की आवाज मर्दाने में न सुन सकें। विकार वश आज्ञा के पालन से दोनों आत्मा की हानि होती है। उस अंश में दृढ़ता पूर्वक संयम पालन करना। सुख का बीज प्रेम में है विकारों में नहीं। उसी सुख का संचय करने क्षणिक अप्रसन्नता के डर से विकार के गढ्ढे में गिरना दोनों की महान हानि है। वे बुद्धिमान परिणाम दृष्टि से शीघ्र प्रसन्न हो जावेंगे। शेष आज्ञाओं का शब्दशः पालन करें, यही सम्मान है।

1 जामाता श्री जयकरण जी बारहठ का पारिवारिक नाम।

एकता का विषय स्वदेशी है

(एकता जीव का स्वाभाविक धर्म है)

(III)

वेदान्त उसी का शास्त्र है जीव, जीव के समागम के लिए सदा आतुर है। इस गुप्त प्रेरणा ही से कुटुम्ब, ग्राम, शहर आदि की उत्पत्ति हुई। शास्त्र सर्वत्र एक सा लागू होता है। ज्ञान मार्ग में अद्वैत मुख्य है परन्तु कर्म-मार्ग (संसार) में द्वैत की मुख्यता है।

एकता के नाशक :

प्रकृति (कुदरत) जीव के साथ योनि, जाति, कुटुम्ब, देह तत्वों तक एकता का भेद कर देती है परन्तु वास्तव में जहां "स्व" शब्द जुड़ता है वहां से एकता का सर्वनाश नहीं होता उसकी सीमा "स्वजाति" तक है। चींटी लाल, काली, सिंह, भूरा, पीला, बन्दर विधि-एथ्नोग्राफी।

विजातीयता :

आत्मोदय पर ग्लानि स्वार्थ-भेद अमंमान स्थिति (निहिलिज्म, सोशियोलिज्म) विजातीय के साथ भी एकता हो नहीं सकती। जैसे अमेरिका, जापान और चीन, ट्रांसवाल, हिन्दी आदि पर कला कौशल, धर्म विरोध।

राजनीति :

अधिकार लालसा, कुटिलता, डिवाइड एण्ड रूल की नीति. बणजारी-राज्य, परन्तु ऐसा राज्य ज्यादा ठहरता नहीं। श्लोका: शास्त्र वचन है। राजा शक्ति से एकता हासिल नहीं कर सकता, घोड़े को पानी पिलाने की मिसाल।

कुल कंटक :

क्षुद्र स्वार्थ (विपक्ष सेवा) अज्ञान-भीरुता-उनको मनाने की कोशिश करो। दांत जीभ कटने की हालत में दरगुजर-मगर सड़ गये हैं-काट फेंको।

एकता कर्तव्य है :

यह जीव की स्वाभाविक गति है-एकता की ओर बढ़ने का क्रम महर्षियों ने चार आश्रमों में बाटा है और सीमा बांधी है।

ब्रह्मचर्य में — शरीर बल, हृदय बल का ऐक्य, मन, इंद्रिय, विचार, कार्य की एकता तक।

गृहस्थ मे — स्वजाति और स्वदेश तक

वानप्रस्थ में — मनुष्य योनि तक

सन्यास में — जड़ चेतना मात्र - " उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् "
वेदांत सिद्धान्त वानप्रस्थ से ही ज्ञान अंश बढ़कर कर्म-वेग गौण हो जाता है इससे सांसारिक एकता कुदरती उदाहरणो के अनुसार जाति तक ही मानी जाती है,

धर्म ऐक्य से नैतिक ऐक्य सहज और आवश्यक है — स्वातंत्र्य और शक्ति आजकल की दशा नैतिक बल पर ही निर्भर है - नैतिक ऐक्य की उत्तेजना के लिये ऊपरी दबाव भी अनुकूल होता है। नैतिक ऐक्य में विरोध (घर फूटना) कम होता है। सब का समावेश हो जाता है।

एकता कर्तव्य है। सीमा भी मालूम है, तब स्वतः साधक निकल आते हैं। उनका दृढ़ संकल्प (आत्मभोग का हो जाता है - कार्यम् साधयामि वा देहं पातयामि) वास्तव में "प्राण हासिल करना हो तो प्राण देना चाहिए, अमर होना हो तो मरना चाहिए।" यही महावाक्य है। आशा निश्चय को स्थिर करती है। निश्चय ही साधना का प्रधान अंग है। कठोर साधना के पश्चात् सिद्धि तो पास ही है। प्रत्येक का संकल्प और साधना एक मात्र एकता ही की ओर होना चाहिए।

एकता के घटकतत्व (साधन)

एक लक्ष्य, राष्ट्रीय ज्ञान, शौर्य, सजातीय ज्ञान-उत्कर्ष, आशा, कर्मवीरता, स्वार्थ-ऐक्य-समान-स्थिति (निहिलिज्म, सोशलिज्म की भावना भी यही है)।
विजातीय से उदासीनता, स्वातंत्र्य-प्रेम-
उपाय भेद से ऐक्य नाश नही होता

भारत में प्रजात्य-भाव (नेशनेलटी) हो सकती है।

पूर्ण वय-एकता की पूर्णावस्था :

ऐक्य भाव स्वभाव-गत हो जाना, शरीर के माफिक, न कि विचार जनित जैसे माता की गाली-ग्रामेर तोड़ने की कथा वर्तमान जापानी ऐक्य ।

एकता ही मुक्ति का एक मात्र उपाय है :

यह नियम से की हुई एकता का फल ही मुक्ति है। " मन एवं मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयो. ससार माना हुआ है। सर्प रज्जु का भ्रम अज्ञात है"।

-(समय सन् 1905-6)

मनुष्य मात्र के हृदय के ठोस सिध्दान्त

(IV)

मन, वाणी, कर्म में जो एक हो और जो सदा एक रूप रहे वही सत्य है इससे विपरीत हो वह असत्य (झूठ) है।

मन प्रत्यक्ष नही इससे वह अलग नही जाँचा जाता। अतः वाणी, कर्म से ही सत्य जाना जा सकता है।

वाणी में और कर्म में भेद होने पर असत्य साफ सामने आता है। वाणी और वाणी में भेद होने से अर्थात पहले कहा उसके विपरीत दूसरी बार का कहा सुनाई दे तो असत्य प्रत्यक्ष हो जाता है।

वाणी वाणी में और वाणी कर्म मे भेद कभी भ्रम से भी दिखाई दे जाता है। परन्तु यदि बार बार वैसा दिखाई दे तो वह असत्य निश्चय ही है भेद होने पर भी जो उसे नही मानता, टालता है या झुंझलाता है तो वह छल है, धोखा है। फिर वह असत्य तुच्छ ही हो या कितनी ही भली नियत से हो अति भयंकर है।

यह सिद्धान्त सर्वमान्य है। मनुष्य मात्र के लिए समान है। प्रत्येक समय इसी कसौटी पर सत्य को कसते रहना चाहिये। जहाँ कुछ भ्रम हो तुरन्त स्पष्ट कर लेना चाहिये। भ्रम बना रहने से प्रेम का नाश होता है। सत्य कभी छिप नही सकता। जिसका प्रेम सत्य के आधार पर है उनको तो निर्णय करके हृदय साफ कर लेने में कभी देरी नही करनी चाहिए। जो निर्णय से दूर भागता है, अनसुनी करता है, क्रोध करता है, या निर्णय से पहिले ही समाधान करना चाहता है वह स्पष्ट प्रमादी व चोर है। सत्य का उपासक निर्णय करके हृदय का भ्रम मिटाने के लिये आतुर रहता है - चैन नही लेता व लेने देता है। दोष स्वीकार मे लज्जित नही होता, पश्चाताप करता है - वह दुबारा नही करेगा। वही सच्चा विश्वस्त है, प्रेमी है, दुर्लभ है।

शक्ति का पीठ स्थान बदल चुका

यों तो भगवती महाशक्ति का स्फुरण अखंड रूप से संसार के प्रत्येक परमाणु में निरन्तर अगोचर लीला कर रहा है, परंतु उसका प्रत्यक्ष दर्शन होता है पीठस्थान में – केन्द्र विशेष में।

भारत का सौभाग्यपूर्ण पीठस्थान था कभी क्षत्रियों के हृदय में बाहुजों की भुजाओं में, परंतु हा ! अब वह उजड़ चला, महाचण्डी भी उस निर्माल्य स्थान को त्याग चुकी अब उसका मरसिया गाना भी व्यर्थ है।

एक अपवित्र स्थान त्यागा जाने पर भी उस जगदंबा की लीला कभी कुंठित नहीं होती। वह आज भूमंडल में नवीन पीठ निर्माण करके अपनी महिमा में प्रतिष्ठित है। उस महाचण्डी के प्रचंड रूप को देखना ही तो जाइये एशिया के पूर्व तट पर, यूरोप के मध्य में, यदि उसके शांत किंतु साहसपूर्ण तेजपुंज को निरखना है तो घर ही में देखिये भारतीय प्रांतों को, उनकी अभ्युत्थान चेष्टाओं को, वहां भी विशेषतः निहारिये जातिनाम से क्षत्रिय-भिन्न नवयुवकों के पीठस्थान प्रदीप्त हृदयों को। कौन अभागा है जो इस दिव्य दर्शन से विमुग्ध न होगा ?

मलबस्त क्षत्रिय जाति में चिर सहयोग के कारण किंचित् खिन्न होकर चारण हृदय निःश्वास के साथ इतना ही कह सकता है कि मां ! वरद क्षेत्र के परित्याग में तेरा क्या दोष, देख :-

सोरठा

बाजी ली बंगाल, महाराष्ट्र बढिया मरद।
पग धकिया पंचाल, (पण) दबक रहया देशोतड़ा[1] ॥
घर गुर्जर री धाक, रगमग बड़ आसण रुलै।
हा ! रजपूत अ्रवाक, ताक रहया भवतव्य नै ॥

वीर अपने भविष्य का निर्माण आप करता है और दैन्य के दलदल में फंसा हुआ कायर ग्रीष्म की प्रतीक्षा में श्वास बिताता है, किंतु मां ! फिर भी क्षमा कर, स्वयं शुद्ध करके अपने पुराने पीठ को अपनाओ।

[20-9-1938]

1. क्षत्रिय

स्वधर्म

"सर्वस्व अपहरण होकर निराधार हो जाने पर भी जब राजपूताने के सर्वोपरि एजेन्ट टू दी गवर्नर जनरल ने कहा कि हमने तुम्हारी जागीर वापिस देने के लिये शाहपुरा राज्य को काफी सिफारिश कर दी परन्तु वे टालाटूली करते है और गवर्नमेंट की "नोन-इन्टरफियरेन्स" पोलिसी के कारण हम "फोर्स" नही कर सकते। परन्तु यदि तुम शाहपुरा पर दावा करोगे तो तुमको अवश्य इन्साफ मिल सकता है। इस पर मैंने यही उत्तर दिया कि गवर्नमेन्ट ने सफाई करदी इसके लिए धन्यवाद..................यद्यपि दस्तंदाजी न करने की दलील थोथी बात है क्योंकि ....परन्तु जो देशी राज्य अपनी प्रजा को न्याय-भिक्षा के लिये आप तक आने में विवश करता है वह राजनैतिक मूर्ख है और पुकार आने वाला कायर, अराजभक्त। मैं कभी शाहपुरा पर दावा करने के लिये आप तक नहीं आऊंगा क्योंकि मेरे पूर्वजों ने शाहपुरा नरेश को स्वामी माना है और शाहपुरा के स्वत्वों के लिये प्राण दिये है। मैं अपने स्वार्थ-वश उनको आपकी कुर्सी के आगे प्रतिवादी के रूप मे घसीटूं, यह कैसे हो सकता है? दो सौ वर्ष पहिले ऐसी घटना पर राज्यसिंहासन को छोड़कर कहां स्थान था? जो उपाय उस समय किये जा सकते थे उनके लिये मैं अब भी स्वतन्त्र हूं।"

[समय, 1922-23]

दुःख और सुख

जगत में विशुद्ध सुख एवं दुःख नही देखा जाता। सुख के साथ दुःख और दुःख के साथ सुख सदा मिला ही रहता है। दरिद्र की झोंपड़ी और राजा के महल में ढूंढने पर भी यह दोनों साथ ही मिलेंगे। चाहे अवस्था भेद से न्यूनाधिक क्यों न हों, मिलेंगे दोनों ही। बहुत से लोगों का मानना है कि दरिद्र दुःख से बढ़कर कोई दुख नही, परन्तु यह भूल है। चिन्ताशीलता, परदुःख-कातरता, सहिष्णुता, दया, ममता आदि जिन गुणों से मनुष्य का मन और हृदय स्वर्गिक भाव धारण करता है वे राजा के महल की अपेक्षा दरिद्र की झोंपड़ी में अधिक विकासमान हैं। जो सदा नाच-रंग, आमोद-प्रमोद में ही लवलीन रहते हैं उनको सोचने विचारने का अवकाश ही कहां? जो यह तक नहीं जानते कि अभाव किसे कहते है, जिन्होंने कभी स्वयं अनुभव ही नहीं किया, वे दूसरे के दुःख पर कैसे पसीज सकते है? मन में उदय होते ही जिनकी इच्छा पूर्ण हो जाती है, उनमे सहिष्णुता का गुण परिपुष्ट कैसे हो सकता है? जिनका हृदय दया के शान्ति बल से धुला ही नहीं वे दया दिखाना जान ही क्या सकते हैं? जो निरन्तर हँसी खुशी के पुतले चापलूसों से घिरे रहते हैं, वे अकृत्रिम स्नेह, ममता को कभी पा ही नही सकते तो भला वे स्नेह, ममता दिखा ही कैसे सकते है?

[समय, 1906-7]

ग्राम-सुधार

(V)

भारतवर्ष में कोई बड़ा राज्य ऐसा नहीं है जिसकी प्रजा में उत्तरदायित्व शासन मांग की लहर न उठी हो। यह देशकाल का प्रबल तकाज़ा है जो आज नहीं तो कल होकर मानेगा। राजनीति की यही खूबी है कि विवश होकर देने का समय आवे उसके पहले देने को स्वयं तैयार हो आगे बढ़कर सावधानी से देने वाला ही शान्ति और प्रेम के साथ लाभ में रह सकता है और उस अशान्ति, अप्रियता और अव्यवस्था से सहज बचता है जो प्रजा में बवंडर उठने के बाद उठानी पड़ती है। उदाहरण रूप में अपनी इच्छा से पानी में गठा बींधने वाले सावधान तैराक और तैराक होने पर भी निद्रा से करवट बदलते पानी में गिरने वाले या धक्का खाकर गिरने वाले के परिणाम भिन्न ही होते हैं।

सत्य अर्थ में सावधान नरेश के निज के और राज्य के हक में प्रजा का वैधानिक सम्बन्ध भला ही सिद्ध होगा—निरंकुश व उच्छृंखल सत्ता का काल अब बीत चुका। प्रजा निर्वाचित एसेम्बलियां अब अपना स्थान लेंगी ही परन्तु भम्भड़ के निर्वाचन में चंद पठित चालाक ही स्वार्थवश आगे आवेंगे और जो सच्ची परन्तु अबोध प्रजा ग्रामों में निवास करती है केवल उकसायी जाकर भेड़िया-धसान से उनकी पृष्ठपोषक होगी और अराजकता का यही मूल होगा।

अतः आवश्यकता है शान्ति के साथ ग्राम-सुधार के रूप में ग्राम्य-प्रजा को उचित सहायता, शिक्षा और उपदेश के साथ स्थायी सुख के मार्ग पर चलने का अभ्यास दिया जाये और उनकी जीवन कठिनाइयां और त्रुटियों को मिटाकर उसे राज्य का प्रधान अंग होने की वास्तविक प्रतिष्ठा पर स्वयं पहुंचाया जाये। इसी लक्ष्य को लेकर ग्राम सुधार का कार्य शुद्ध और कर्तव्य की भावना से प्रारम्भ किया जाय। आपातरम्य दिखावे से कुटिल नीति का नाटक सनातन से राजभक्त

ठा. केसरीसिंह द्वारा दिनांक 3-6-1941 को ग्राम सुधार के सम्बन्ध में महाराव कोटा के लिये तैयार किया गया नोट-

और स्वदेशी -स्वधर्मी एवं आत्मीय प्रजा को उत्तम परिणाम पर नहीं पहुंचा सकता-बल्कि भयंकर ही होता है। अतः प्रजा को स्पष्ट मालूम होने दिया जावे कि इस अनुष्ठान से वह योग्य बनकर निर्धारित समय पर राज्य प्रबन्ध में अपने सहयोग के अधिकार पर पहुंच जायेगी—भारतीय संस्कृति में राजा-प्रजा का सम्बन्ध पारिवारिक पद्धति पर निर्माण हुआ है। यही कारण है कि सर्वसाधारण प्रजा के हृदय में राजभक्ति के संस्कार अभी तक जमे हुये हैं। उसे अधिक पुष्ट करके निवृत्ति-सत्ता की भित्ति को दृढ़ करने का यही उपाय है नोचेत् नवीन आन्दोलनों की तरंग पर उठते हुए छत्रछाया आदि शब्दों का कोई अर्थ नहीं। ग्राम-सुधार कमेटी की रिपोर्ट उचित रूप में हुई है। यदि इसके सामने उपरोक्त भावी एसेम्बली का ध्येय होता तो अधिक अच्छी व्यवहार पद्धति को प्रगट कर सकती। रिपोर्ट में अनेक स्थानों पर अफसराना ढंग का पुट लगा हुआ है क्योंकि सब मेम्बर अफसर ही थे, वह त्रुटि न रहती। परन्तु इस शुभ अनुष्ठान का प्रारम्भ श्रीमान् की ओर से उचित घोषणा के रूप में ध्येय को प्रकट करके किया जाय तो प्रजा को अधिक संतोष होगा।

अपनी बुद्धि अनुसार श्रीमान् की घोषणा की रूपरेखा भी खींच देने का साहस करता हूं-इसमें आवश्यक न्यूनाधिक हो सकता है।

घोषणा

हमारे पूज्य पितु श्री प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय श्री महारावजी साहब की यह इच्छा थी कि कृषि प्रधान कोटा राज्य की मूल प्रजा, जो कि वास्तव में हमारी ग्रामों में बसी हुई है, देशकाल के अनुरूप राज्य व्यवस्था का ठीक ठीक ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करके हमारे राज्य शासन को अधिक जागृत और लोकप्रिय बनाने में सहयोग दे। हमारा भी मुख्य ध्येय यही है कि हमारी प्रिय और स्वामिभक्त प्रजा भारतीय संस्कृति के अनुरूप कोटा राज्य के सुव्यवस्थित विधान को देशकालानुसार अधिक सुन्दर और सुदृढ़ बनाने में हमें यथोचित सहयोग देने के योग्य बनकर हमारे साथ स्वयं सुख शान्ति और समृद्धि की भागी बनते हुए अपने प्रजाधर्म को अधिक उज्ज्वल आदर्श सिद्ध करे। हम चाहते हैं कि ग्राम पंचायतों से जो कि स्वयं ग्राम जनता द्वारा संयुक्त निर्वाचन पद्धति के निर्मित होगी निर्वाचित वास्तविक योग्य प्रजा प्रतिनिधि एसेम्बली के रूप में शक्ति शीघ्र हमारे सहयोग में आवें।

इसी ध्येय को सामने रखकर ग्राम सुधार के साथ में यह ... जाता है और इसके लिये ग्राम सुधार विभाग का एक स्वतन्त्र ... करते है जो वास्तव में ग्राम सेवक के रूप में प्रजा की सेवा करेंगे

हमारी प्रजा अपनी ही सुख शांति और समृद्धि के लिये इस अनुष्ठान को धैर्य और लगन के साथ पूर्णता पर पहुँचावेगी।

ग्राम सुधार का काम सामान्य नहीं है कि जिसे माल आदि कोई एक महकमा अतिरिक्त रूप से ग्रामरेरी सफल कर सके। ग्राम सुधार कमेटी ने जो रिपोर्ट की है उसे कार्य मे परिणित करने के लिये एक योग्य व्यक्ति को सिर्फ इसी पर नियत किया जाये और उसकी हैसियत एसिस्टेन्ट रेवेन्यू कमिश्नर की हो। वह सम्बन्धित महकमों से ठीक-ठीक सहायता ले सके इसके लिये माल, शिक्षा, मेडिकल आदि महकमों को हिदायत की जाये।

ग्राम-सुधार विभाग का सम्बन्ध सीधा महकमा खास से रहे। ग्राम सुधार डाइरेक्टर की आवश्यकतानुसार इस विभाग का स्टाफ रहे।

डाइरेक्टर ग्राम-सुधार प्रथम 6 माह मे निरन्तर घूम कर कार्य प्रारम्भ के लिये अनुकूल क्षेत्रों को सर्वे कर 20 निजामतों में ऐसे ग्राम चुने जिनमें सफलता निश्चित हो। प्रारम्भ की असफलता भविष्य को निरुत्साह पर डाल देगी।

डाइरेक्टर की आधीनता में खास ट्रेनिंग दी जाकर ग्राम सेवक तैयार किये जायें क्योकि सफलता का सारा दारोमदार ग्रामसेवको पर ही है।

ग्राम सेवको की ट्रेनिंग का काम अभी शुरू कर दिया जाय ताकि डायरेक्टर की सर्वे समाप्त होते ही ग्राम-सेवक कर्तव्य पर जमा दिये जायें-कार्यकर्त्ताओं की त्रुटि न रहे। जहाँ तक हो इसे राज्य मे से देहात मे से भी ग्राम सेवक चुने जायं-विशेष उपयोगिता पर बाहर का व्यक्ति भी डाइरेक्टर की जिम्मेवारी पर लिया जा सकता है। ग्राम सेवक साधारणतया मिडल पास या कम से कम उतनी शिक्षा वाला होना ही चाहिए। शिक्षा-विभाग के द्वारा देहाती मास्टरों से को-आपरेटिव सोसायटी द्वारा एवं माल के पटवारियों से जो कि स्थानीय अनुभव विशेष रखते हैं, उन सबमें ऐसे व्यक्ति छंटाकर सूचना प्राप्त की जाये जो स्फूर्ति उत्साह और योग्यता से होंगे योग्य हों फिर उनमें से छटनी की जायें। ट्रेनिंग के अनुभव पर भी छंटनी होती रहे ताकि सिर्फ तनख्वाह के भूखे न घुस सकें।

शिक्षा पाने वाले अपने खर्च से रहें-ग्राम सेवक के पद पर नियुक्त किये जाने पर ग्राम सेवक का वेतन 15/- से 25/- तक हो। यह ट्रेनिंग शिक्षा विभाग के साधारण ढर्रे में सफल होने की संभावना नहीं। अतः ट्रेनिंग का स्वतंत्र प्रबन्ध हो और उसका मुखिया ऐसा हो जो स्वभाव से जनसेवा में जीवन बिताने की लगन रखता हो। ग्रामीण स्थिति का अनुभव और शिक्षण पद्धति का मर्मज्ञ हो, उद्देश्य साधन में मार्ग निर्माण करने वाला दिमाग रखता हो-मेरे विचार मे कोटे में एक ही ऐसा व्यक्ति है जो इस कार्य के लिये पूर्ण रूप से उपयुक्त हो सकता है और वह शंभूदयाल सक्सेना बजन एम॰ ए॰ है।

मैं अधिक डिटेल में नहीं जाना चाहता। केवल संक्षेप में अपने विचारों को निम्न रूप में प्रकट करने की चेष्टा करूंगा।

प्रारम्भ में रिपोर्ट कमेटी में से आवश्यक अंग छांटकर दसवर्षीय योजना डाइरेक्टर, ग्राम सुधार के हाथ में दी जाये जिसकी चार किस्त होंगी—

प्रथम पंचवर्षीय किस्त

इन पांच वर्षों में प्रौढ़-शिक्षा का विस्तार होकर गांवों में बालिग मताधिकार द्वारा सयुक्त निर्वाचन शैली से ग्राम पंचायतों का योग्य निर्माण हो जाये और पंचायतें व्यवहारिक पद्धति शांतिपूर्वक अपने अधिकारों का सदुपयोग करने लग जाये बल्कि इस आशा तक पहुंच सके कि ग्राम का सामूहिक राज्य-कर [कहना] ठीक-ठीक समय पर निजामत में पहुंचा दें और माल के कार्य में सहायक हों। इसी प्रकार ग्राम संगठन से ग्राम-रक्षा का भार लेकर पुलिस का काम हल्का करदें-न्याय विभाग को कागजी घोड़ों से बचा सके। ग्रामों में अभी केवल तीन उद्योग धंधें ही चल सकते हैं [1] चर्खा और कपड़े बुनने तक की संपूर्ण विधि [2] पशुपालन [3] कृषि सुधार अर्थात् देहाती प्रजा के लिये सुख शांति की प्रथम आवश्यकता है—पर्याप्त मात्रा में अन्न, कपड़ा और पशुधन की निश्चिन्तता। प्रत्येक गांव की राजकीय आमदनी में से कम से कम 5/- रु. सैंकड़ा ग्राम पंचायत को मदा मिलता रहे। पांच वर्ष की समाप्ति पर यही ग्राम पंचायतें अपने में से निर्वाचित प्रतिनिधियों से निजामत बोर्ड का निर्माण करेंगी-यह सुधार की पहली किस्त होगी।

दूसरी तीन साला किस्त

ग्राम पंचायतों के प्रतिनिधियों से निर्मित निजामत बोर्ड दो वर्ष में पूरी निजामत का संगठन करके कमेटी की रिपोर्ट को पूर्णता पर पहुंचायेगी।

तीसरी दो साला किस्त

डिवीजन (प्रांतीय बोर्ड) जो कार्य प्रारम्भ से नवें वर्ष के प्रारम्भ में निजामत बोर्डों के निर्वाचित प्रतिनिधियों से निर्मित होगी, दो वर्ष के डिवीजन (अन्तर्प्रान्तीय) का संगठन करके अपने उत्तरदायित्व का अनुभव प्राप्त करके राज्यभक्तिपूर्ण प्रजा की सुख शान्ति की जड़ दृढ़ करती हुई प्रजा को सुखी जीवन के लिये आत्म निर्भरता का विश्वास देगी और अन्त मे प्रजा के और राज्य के आर्थिक, नैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सब विषयों में हितकर विधान के लिये अपने प्रतिनिधि चुनकर राजधानी में भेजेगी।

चौथी किस्त

डिवीजन बोर्ड आबादी के अनुपात से निर्धारित मेम्बर निर्वाचित करके राजधानी में भेजेगी और उनके साथ नियमानुकूल राजकीय प्रतिनिधि एवं मनोनीत प्रजा मेम्बर प्रजा आदि से जो संस्था बनेगी वही कोटा राज की एसेम्बली होगी ।

संक्षेप में

ग्राम सुधार का मुख्य ध्येय होना चाहिए - ग्रामीण जनता का रूढ़ियों और संकुचित भावों से ऊपर उठाकर आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता। राज्य सुख नहीं बांट सकता केवल प्रजा के लिये सुख साधन का मार्ग खोल सकता है-बिना शिक्षा और कार्यान्वित उपदेश के कोई भी सुधार चिपकाया हुआ स्थायी नहीं हो सकता । यही सब आवश्यक मुख्य कार्य योग्य ग्राम सेवक को ही करने होंगे क्योंकि ग्राम में औषधि, कृषि शिक्षा, स्वास्थ्य, पशु, उद्योग-धंधे, संगठन आदि प्रत्येक अंग में ग्राम सेवक का परिश्रम घुला मिला रहेगा। परन्तु वह कितना ही सेवाधर्मी क्यों न हो, अपना व अपने पोष्यों का निर्वाह तो चाहेगा ही । यह खर्चा शुरू शुरू में अवश्य ही अधिक प्रतीत होगा परन्तु आगे जाकर ग्राम पंचायतें अच्छी बन गयी तो माल और को-आपरेटिव सोसायटीज में इस समय खर्च होने वाली बहुत रकमें स्वयं कमी में आजाएँगी । को-ऑपरेटिव सोसायटीज जो आज तक निष्फल ही सिद्ध हो रही है, वह आगे जाकर अनावश्यक सिद्ध हो सकती है जबकि ग्राम सुधार का कार्य एक अवधि तक ही होने वाला है तो उसकी सफलता में दिल खोलकर खर्च करना चाहिए। अपने जीवन को प्रजा के हित में घुला देने वाला उन साधारण दिमागों से अधिक श्रेष्ठ और हकदार है जो भाग्य के आधार पर सैंकड़ो की आमद को भी अपने लिये कम समझते हैं ।

मलवस कमेटी की यह उचित सिफारिश है कि ग्राम सेवक को वेतन के अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा के बदले में प्रति व्यक्ति वर्ष में चार पांच रुपये मिलते रहें तो यह उसके लिये उचित प्रोत्साहन और सहायता हो सकती है किन्तु है यह अस्थिर। सबसे अन्त में मेरा दृढ़ विश्वास है कि श्रीमान् का व्यक्तित्व जितना प्रजा के हित शांति और उत्साह में सहज अमृत का कार्य कर सकता है उतना लाखों रुपये खर्च करने पर भी वह लाभ नहीं मिल सकता। केवल समय समय पर दौरे के प्रसंग में साधारण ग्राम्य जनता के बीच श्रीमान् का पधारना और हंसते हुए दो चार बातें करना सुख दुख पूछना, प्रोत्साहन देना ही ग्राम सुधार के काम में जीवन डाल देगा, उसे आसान असली चोला पहना देगा। अभी तक बड़े दरबार का हंसमुख, सरल व्यवहार प्रजा के हृदय में स्थान किये हुए है। न चाहते हुए भी कुछ विस्तार हो गया इसकी क्षमा ।



श्रद्धांजलि

श्रद्धांजलि

ठा. केसरीसिंह जी के स्वर्गवास पर राजस्थान के अनेक कवियों ने काव्यमय श्रद्धांजलियां लिखी थीं एवं कई बाद में भी। उनमें से कुछ श्रद्धांजलियां यहां दी जा रही हैं।

सोढा मिंत सपूत

—उदयराज उज्ज्वल

अडिग देस अनुराग, पूजारो रजपूत रो ।
ताकव तीखो त्याग, करगो सोढो केसरी ।।

थिर संवत रजथान, भ्रात पुत्र संचित विभो ।
देस हेत बलिदान, करगो बारहठ केहरी ।।

करगो केसरियाह, केसरिया जिह कारणे ।
कांग्रेस करियाह, भेस तमीणां भारती ।।

लीधो घर सह लूट, मोदे रो सीसोदियो ।
हुआ हुरी बेपूठ, इसडा करमी सूं अवे ।।

रखियो जिकै न राम, इक मांसण हित अनरथो ।
आ चोरासी गांम, उण लोभी रा आवगा ।।

पड़ जासी पोलाह, पात जिकां रा पाडिया ।
रजहीणां रोलांह, कांगरेस दे केहरी ।।

रह्यो निरंकुस राह, धुनी सुतंतर धारणो ।
पिंड स्वारथ परवाह, करी न सोदे केहरी ।।

श्रद्धांजलि

ठा. केसरीसिंह जी के स्वर्गवास पर राजस्थान के अनेक कवियों ने काव्यमय श्रद्धांजलियां लिखी थी एवं कई बाद में भी। उनमें से कुछ श्रद्धांजलियां यहां दी जा रही हैं।

सोदा मिंत सपूत

—उदयराज उज्ज्वल

अड़िग देस अनुराग, पूजारो रजपूत रो।
ताकव तीखो त्याग, करगो सोदो केसरी॥

थिर संपत रजथान, भ्रात पुत्र संचित थिभो।
देस हेत बलिदान, करगो बारहठ केहरी॥

करगो केसरियाह, केसरिया जिह कारणे।
कांगरेस करियाह, भेस तमीणां भारती॥

लीधो घर सह लूट, सोदे रो सीसोदियो।
हुआ हरी बेपूठ, इसड़ा करमी सूं अवे॥

रखियो जिकै न राम, इक सासण हित अनरथी।
खा चौरासी गाम, उण लोभी रा आवगा॥

पड़ जासी पोलांह, पात जिकां रा पाडिया।
रजहीणां रोलांह, कांगरेस दे केहरी॥

रह्यो निरंकुस राह, धुनी सुतंतर धारणो।
पिंड स्वारथ परवाह, करी न सोदे केहरी॥

साहा ने सुभराज, दिया घनेकां टूथियां
गोरां ऊपर गाज, करगो हेको केहरी ॥

दास भाव सूं देस, सोदे मे नहँ समभियो ।
विण सूं सेव विसेस, कर नहँ सकियो केहरी ॥

रच क्रान्ती पथ राह, सेवा करी समाज री ।
चमकी चोगड़दांह, कीत धरा पर केहरी ॥

गीत

—बारहठ कान्हीदान, देशनोक

कर गयो कूच, रजवाट रो केसरी, विधि श्रादेस री राख बातां ।
मिल गई जोत में जोत परमेसरी, अमर कर नाव रजवाट ख्याता ॥

ऊठगो कवीन्द्र श्राज इण लोक सूं, थोक सूं मिलण सुर विडद थापी ।
सुकवि जा मिल्यो उम्मेद नृप सोख सूं, मोख सूं अमरापुर राह मापी ॥

देव विमाण मन अफसरां अजसी, ऊरबसी रंभ मिल ऐम भावै ।
काव्यकान्ता पति वीर रस रंजमी, गोरवी चित्तौड़ा गीत गावै ॥

लेय निज हाथ कवि धजा इण देस री, सेस री जाय सुरलोक रोपी ।
अमर सहीद प्रताप पितरेसरी, अमरापुर राव री सभा ओपी ॥

रंग इक रंगे केसरी

—ठाकुर अक्षयसिंह रत्नू

रे गरबीले केसरी, सुजस कथित संसार ।
तो पर तोर प्रताप पर, अक्षय है बलिहार ॥

मुग्ध राजनैतिक रसिक, सुजस सुगंध समीर ।
केसर सम केसर जहां, कुल चारण कशमीर ॥

मर्जी उपस्थित अपुन में, केसर से नर-नाह ।
बीते दिन जाते बिहद, क्यों न उठाते लाह ।।

योग्य पोरस गुणन के, जगत करै जग जाप ।
हुयो कौन माँ केसरी, करो प्रबल प्रताप ।।

रह्यो उमगे वीर रस, ओज उमगे अंग ।
रंग हकरगे केसरी, चारण चंगे रंग ।।

मान हानि मढ़ियांह, हीमत चित चढ़ियां हमें ।
वीर मरै मढ़ियांह कन्दर कढ़ियां केसरी ।।

कवि केहर कंठीर

—रावल नरेन्द्रसिंह
जोबनेर

कवि केहर कंठीर, मोटो केहर नांपरत ।
मन केहर बड़मीर, इण् तैं केहर ऊठगो ।।

पात भणे रजपूत, इल में मिलसी अणगणित ।
भोपालो अद्‌भूत, छंदे कवण कंरुठिया ।।

केहर ईहग कार, चित्तांड़े छांडी नहो ।
मनपण हंदो भार, पतो बंस किम पांतरै ।।

कवि गाढ़ा करणेस, जोबनेर नरनाथ जो ।
फलमल जस किम पेस, करै नजर नरपंद अहै ।।

कवि को भ्रात किशोर, किसन विता कैलास मेंक ।
सोदे कुल सिरमोर, कीघ सरब कवियांण कज ।।

कोर्‌यो पाहण फेर, केहर बाहर कारणे ।
भेंटज बब्बर शेर, कीधी नरियंद वर्णमुत ।।

सोदा हंदी साख, रहसी जब लग थिर रसा ।
दिल सांचे तैं दाख, खागो नरपंद भेंट कर ।।

□ माणिक भवन की सिंह मूर्ति जोबनेर रावलजी ने भेंट की थी ।

हाड़ौती के हृदय धन

—लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी
अलवर

हाड़ोती के हृदय धन, चारण कुल के चन्द ।
वीर भूमि वन केसरी, जय जय जय स्वच्छन्द ।।

फूल उठे जिनके स्मरण, पर जननी हृद धाम ।
ऐसे सुमनों का निधन, रोदन का न मुकाम ।।

आजीवन आइ न जिस, आनन पर दुख रेख ।
उसे न होगा अमित दुख, हमको कातर देख ।।

कैसा दुख कैसी व्यथा, कैसा हाहाकार ।
मरण महोत्सव मर्द का, बनता है त्यौहार ।।

सूना सा जननी वदन, लख निज सूनी गोद ।
होता दीपित गर्व युत, सुमन सुयश के मोद ।।

अहो केसरी ! आज है, मुदित शृंगाल समाज ।
कारण आज प्रशान्त है, तव गर्जन की गाज ।।

बलिवेदी पर देश की, चढ़ना है दुशवार ।
किन्तु जिगर के टूक को, बलि खांडे की धार ।।

वक मराल सम श्वेत सब, जन-सेवक समुदाय ।
बिरला ही नर केसरी, असि धारा पथ जाय ।।

कलम न होगी बन्दिनी, जिह्वा पर नहिं रोक ।
गायें जायेंगे तभी, तव गुण गण के श्लोक ।।

मेरी अरथी पर न प्रभु, बरसें शतदल लाख ।
रखदे कोई देश के, दीवानों की राख ।।

वीरों का आदर्श

—श्रीकृष्णदत्त शास्त्री
अलवर

कारागार जिसे भाया था निशिदिन ऐसे,
भक्तजनों को कृष्ण शरण भाता है जैसे।
वीरों का आदर्श बना जो निर्भय होकर,
त्यागी कहते किसे दिखाया सब कुछ खोकर॥

हिन्दू हिन्दी हिन्द प्रेम को कभी न भूला,
किंकर्तव्य - विमूढ़ बना जो कहीं न झूला।
गिरगिट का सा रंग बदलना जिसे न भाया,
किया वही जो सदा विमल मानस को भाया॥

शाहपुरा भूपाल दूर कर जिसको घर से,
सदा कांपते रहे, हृदय मे हरि के डर से।
पाकर कोटा भूप जिसे अति धन्य हुए थे,
प्रजाजनों को प्रेम सुधा में सने हुये थे॥

राणा को कर्तव्य सुझाया जिसने चोखा,
ठीक समय पर ब्रिटिश नीति ने खाया धोखा।
करता था यह देश प्रेम जिसकी रग-रग में,
भरता था उत्साह सर्वथा जो अग जग मे॥

देख देश की हीन दशा जो कभी न सोया,
प्यारा पुत्र 'प्रताप' देशहित जिसने खोया।
चारण कुल आकाश का चन्द्र कहाँ वह है गया,
[illegible]

दोहा

—नारायणसिंह "सेवाकर" नोखा

समता शक्ति सुतन्त्रता, श्रम भर सील सुमिट्ट ।
कोट क्षमाधृति केहरी, देश भगत में दिट्ठ ॥

दिग्गज दरसन शास्त्र में, धरम धुरंधर धीर ।
पाटक संस्कृत में प्रबल, हुयो केहरी हीर ॥

केसर केसरिया किया, वीगे वेस बणाव ।
सुभग सहोदर साथ में, डारण खेले डाव ॥

करसण कीधो केहरी, खड़्यो बगावत खेत ।
काज कट्ठबो साझियो, नह बड़ियो निज हेत ॥

बागी बण नह बावणी, बीजे भुज बंदूक ।
कदै न चूको केहरी, सूरा साख अचूक ॥

सुहड भ्रात जामात सुत, समिधा हुआ सुचंग ।
जग्य हुतासण झोकिया, रंग केहर घणरंग ॥

हेमकड़ी तज हथकड़ी, पहरी बेड़ी पाय ।
जनमभोम हित झूझियो, जेलों केहर जाय ॥

कुरब कायदा चल अचल, जर जेवर जागीर ।
दिया देश हित दाव मे, धिन केहर रणधीर ॥

कंकण कुंडल मुकुट मणि, मोतीड़ा गलमाल ।
सोदो तिलक सिंदूर रो, भारत मां रे भाल ॥

केहर श्रीखंड काठ ज्यूं, सौरभ सील सुभाव ।
घिसियां हद री गध दे, हद लखियां हद ताव ॥

चुलिया सब चल पत्र ज्यूं, शत्रु मित्र सर्वत्र ।
भाखो मे उड़ियो नही, श्रो सोदो प्रसिपत्र ॥

☐ मजदूर -अर्थात् देश सेवा में पैसो के मजदूरों को नही लिया ।

बारहठ त्रिमूर्ति

—यशकर्ण खिड़िया

बन्धु पुत्र युत केसरी, करके केसरि नाद ।
क्रान्ति-पंथ के पथिक हो, कीन्ह देश आजाद ॥

केसरि और प्रताप अरु, जोरावर वर वीर ।
कीन्ह निछावर देश हित, संयुत विभव शरीर ॥

साहस शौर्य सुत्याग युत, भारत भक्त प्रवीन ।
उनके सुयश शरीर की, ये प्रतिमाएं तीन ॥

ख़िराजे-अक़ीदत[1]

—नन्दकिशोर "नवाब" सांदू

जिनकी इक आवाज़ से, हिलते हैं कोहसार[2]
जमहूरियत[3] के दीवाने, वो मर्दे- खुद्दार[4]
न पुजे जीते जी, लेकिन पसे-मर्ग[5]
ज़ियारतकदे[6] हो जायेंगे, उनके मज़ार[7]
सदके[8] उस ज़मीं[9] के, पैदा किये हैं जिसने
बारहठ केसरी औ - जोरावर - औ - परताप
छिड़ेगा जब.- जब भी, क़िस्सा - ए - शहीदां[10]
अक़ीदत[11] से झुक जायेगी, सारी कायनात[12]
"नवाब" तुम भी अपने को मुक़द्दस[13] करलो
माथे पर चढ़ा के शहीदों की खाक[14] ।

1- श्रद्धांजलि 2- पहाड़ 3- स्वातंत्रता 4- स्वाभिमानी
5- मृत्यु के पश्चात् 6- तीर्थ स्थान 7- स्मारक 8- न्योछावर
9- मातृभूमि 10- शहीदों की कहानी 11- श्रद्धा 12- सम्पूर्ण
विश्व 13- पवित्र 14- मिट्टी

कवित्त

—ठा. बलवन्तसिंह बारहठ
माहूंद (अलवर)

देश भक्त धाय गया हाय असहाय छोड़ि,
बुद्धि का गनेश, सिन्धु हृदय विशाला का।
हौसिला का किला टूटा, कोष फूटा साहस का,
भारी अफसोस गान जीवन निराशा का ।।

विद्या का बृहस्पति समाज का सुधारक थो,
पिता परताप भ्रात बाणी सुरशाला का ।
हे हरि ! अन्याय हुआ राजस्थान शेर मरा,
केशरी सुमेर गिरा मेरी जाति माला का ।।

यो सन्देस दियो छो केसर

—कुं. सवाईसिंह धमोरा

रजवट री वट राखो राजन, वेदां री वट विद्वद राज ।
लिछमीवान लच्छ सिर राखो, सेवक सेवा लोग स्वराज ।।

सामन्ता श्रीमंता सुणज्यो, देस दबरियो गोरा राज ।
वैभव और विलासी बाधव, सोभित हो ना बिना स्वराज ।।

दीन धर्म अर देस सभालो, हिन्दू मुसलिम सिक्ख समाज ।
स्वराज्य साधण सघो सगठण, राजा प्रजा तख्त अर ताज ।।

प्रभु सत्ता बिन धन नंह रहणों, रहणों धर्म न दीन ईमान ।
प्रभु सत्ता पावण पण पल्कि, राजा रैय्यत राखो स्यान ।।

स्यान मान अर आन रखायां, रहसी धन्न धरम ईमान ।
भारत माता जग विख्याता, कर री क्रन्दन देवो कान ॥

ओ सन्देस दियो छो केसर, जागां-जागां अलख जगाय ।
सुण्यो गणां पण गुण्यो न कोई, हूणी खेल रही हुलसाय ॥

कवी ओर करतार एक छै, वाणी कदे अथा नंह जाय ।
राजा जातां राज रैवतो, राजा रज्जू रिजक गमाय ॥

जुग पलटै पर सत्त सास्वत, सत पथ रा गामी आ सेव ।
सत साध्यां आ सत्ता रहसी, सत्ता रा मांभी सुण लेव ॥

आज गरीबी गलो दबोचै, सत-मत रो करवै संहार ।
घाल गड़गनो ऊंडी गाड़ो, सुखी हुवै सारो संसार ॥

प्रताप रा सोरठा

—गणेशीलाल व्यास "उस्ताद"
जोधपुर

रजपूतो रे राज, सिर जूंझार परतापसी ।
राणै पायो राज, सोभा सारी जात में ॥

माथो देय स्वराज, लीनो अजमेरी पती ।
इण रो हुयो अकाज, सेठी सठग्यो सोग मे ॥

दोय हुआ परताप, रूड़े राजस्थान मे ।
वुण रा आवे थाप, इण रा रूळग्या रोळ मे ॥

अकबर दुसमण देस रो, देस भगत परताप ।
किसा देस रो बात कवे, ओ कुल बारठ आप ॥

उपदेसक अणमोल

—ठाकुर रामसिंह राठौड़
केलवा (मेवाड़)

दोहा

चारण छप्पया रो चतुर, उपदेसक अणमोल,
बारठ केहर बीछड़यो, तिण दुख रो नह तोल ।।

काव्य सुधा सींचै कवण, मृतकां कवण जिवाय ।
किसनावत कोटा तणो, बारठ केहर नांय ।।

राजस्थान रा रतन रो, जीता जतन न कीन ।
अब केहर कर सूं गया, रोयां श्ररथ रती न ।।

चीता मिल भहुडे चढै (तो) मीढां बकरा मार ।
केहर विण अब कुण करै, सबलां गजां सिकार ।।

फबती खारी फेट, बात लपेट चपेट दे ।
अवगुण री श्राखेट, करसी अब कुण केहरी ।।

सेवा जुत जीवन सकल, इष्ट ध्यान तन त्याग ।
केहर बारठ सो कहुं क, पावत मोटे भाग ।।

केहर मरि कै अमर भो, करिबै रह्यो न सेस ।
जिहि को राजस्थान जस, अंकित अचल हमेस ।।



परिशिष्ट

"चेतावणी रा चूंगट्या" के सम्बन्ध में

राव गोपालसिंह खरवा का पत्र

(खरवा के ठाकुर गोपालसिंह जी राजस्थान के एक महान क्रांतिकारी और ठाकुर केसरीसिंह बारहठ के मित्र एवं सहयोगी थे। श्री केसरीसिंह जी बारहठ ने "चेतावणी रा चूंगट्या" लिख कर महाराणा फतहसिंह जी को दिल्ली दरबार में शामिल न होने को प्रेरित किया था।)

चिरंजीव भतीज श्री चेतसिंह योग्य,

म्हारी आशीष बाचजे। अत्र कुशल तत्रास्तु। अत्र म थारो पत्र आया घणा दिन हो गया, परन्तु उत्तर देवा में देर हुई जी को कारण यो हो कि प्रथम तो म्हू खरवा सू बाहिर गयो हुयो हो। 15-16 दिन के पश्चात् जद म्हूं घरवे आयो तो म्हारे बुखार व्हे गयो और 15-20 दिन तक लगातार बण्यो रह्यो। बुखार 101 डिग्री सूं लेकर 105 डिग्री तक बण जातो हो। ईं प्रकार शारीरिक अस्वस्थता का कारण सूं जल्दी प्रत्युत्तर नहीं दियो जा सक्यो।

---

1. ठाकुर केसरीसिंह बारहठ की कोटा ट्रायल में दी गई शहादतों से पता चलता है कि 1911 ई. के दिल्ली दरबार में भी महाराणा को जाने से रोकने के लिये खरवा ठाकुर गोपालसिंह तथा उनके [illegible] महाराणा को मेवाड़ के सरदारों के नाम से पत्र भिजवाया

स्वर्गीय महाराणा साहेब फतहसिंह जी नाई कर्जन का दरबार में दिल्ली पधारना लाग्या, उण समय जो दोहा बणार भेज्या वे बारहठजी केशरीसिंहजी (जो मेवाड़ का ही है और 30-35 वर्षां सूं कोटे रहवे है) का बणायोड़ा है। म्हूं तो महाराणा साहेब के दिल्ली पधारवा सूं पहली ही दिल्ली चल्यो गयो हो और म्हारो दिल्ली जावो भी महाराणा साहब जद दरबार में न पधारया तो म्हूं महाराणा साहब की दृढ़ता विषयक दो दोहा बणा कर दिल्ली में ही इयरू मालम कर दिया हा, जो इण प्रकार है :–

होता हिन्दु हताश,
नमतो जे राणा नृपत।
सबल फत्ता साबाश,
आरज लज राखी अजां ॥ 1 ॥

करजन कुटिल किरात,
शशक नृपत ग्रहिया सकल।
हुयो न थूं इक हात,
सिंह रूप फलमल सबल ॥ 2 ॥

बारहठ केशरीसिंह जी जो दोहा बणार भेज्या, वे "चेतावनी रा चूंगट्या" नाम सूं प्रसिद्ध है। महाराणा साहेब के दिल्ली पधारबा का समाचार राजस्थान में फैलता ही क्षात्र-स्वातंत्र्य का पुजारिया का हृदयां पर असह्य चोट पहुंची। क्षात्र-शक्ति का भक्त बारहठ केशरीसिंहजी ए दोहा बणा कर महाराणा साहेब की सेवा में भेज्या। उण वगत महाराणा साहेब स्पेशल ट्रेन द्वारा उदयपुर सूं रवाना हो चुक्या हा। ये दोहा नसीराबाद की स्टेशन पर श्री दरबार के नजर हुआ, उण वगत फरमायो बतावे है कि यदि ये दूहा उदयपुर में ही मिल जाता तो म्हैं दिल्ली के लिए रवाना ही नहीं होता, परन्तु अब तो दिल्ली पहुंच कर ही इस पर विचार [illegible] पहुंच कर महाराणा साहब जो कुछ कर दिखाई वा ससार प्र[illegible] महाराणा साहेब दरबार में नहीं पधारया। जिण वगत [illegible] सूं भरया दरबार में सम्राट को प्रतिनिधि लार्ड [illegible] हेब की खाली कुर्सी की तरफ देख रह्यो हो उण वगत [illegible]

साहित्र की लिये हुए स्वतन्त्रता की वेदी चित्तौड़ की तरफ दौड़ रही हो। थारी जाणकारी के लिये वे दोहा (बारहठ जी कृत) नीचे लिख्या जावे है।[1]

लार्ड कर्जन का दरबार में बड़ौदे दरबार भी कई प्रकार की गड़बड़ करके लार्ड कर्जन का प्रभाव ने नहीं मान्यो हो।

सुणबा मे आई है कि आजकल भाई जी पर श्री हजूर की बड़ी कृपा है और केई महकमो को काम भी सोंप दियो है बड़ी प्रसन्नता की बात है। पढ़वा लिखवा तथा घोड़ा बन्दूक को अभ्यास राखजे, थारी प्रसन्नता को पत्र देतो रीजे।

थारो सर्वदा शुभेच्छु
(गोपालसिंह राष्ट्रकूट)



1 चेतावनी रा चूंगट्या दोहे प्रथम खंड में देखें।

कॉल्विन का जयपुर नरेश को लिखा पत्र

Appendix 'B'
File No. 129 II

TOP SECRET
Camp Udaipur.
The 7th August, 1914

No. H/636 of 1914.

My Honoured and Valued Friend,

I am addressing you by desire of the Government of India in regard to the recent revolutions regarding the spread of sedition in Rajputana.

2. The facts which have come to light create a situation which must naturally cause considerable anxiety, not only to the Government of India but also to the Darbars in Rajputana.

Apart from the fact that a murder was committed in Kotah two years ago apparently with a political motive, and that no intelligence was received of this crime until March 1914, when a clue was discovered in the course of enquiries in connection with other case, it appears that there has been existing for some years in Rajputana without the knowledge of Darbars or of the *Political officers, a secret Political organisation directed originally* against the Chiefs of Rajputana but subsequently against the British Government. Attempts have also been made both by Kesri Singh in Jodhpur and Kotah and by. Arjunlal in Jaipur, to spread sedition among Rajputana by means of education, and masters and students from the Boarding Houses established by them in Jaipur, Jodhpur. and Kotah were it seems, concerned in the political murder at Arrah and Kotah. Steps are now being taken, as the result of the discoveries made by Mr.

Armstrong, to prosecute those responsible for the murder at Kotah Including Kesri Singh and it is understood that the Jaipur Darbar will also institute proceedings against Arjunlal for abetment of the Arrah murder. These prosecutions may be expected to have a salutary effect in checking sedition actively in Rajputana States, but it is necessary in the opinion of the Government of India, that some further measures should be taken to prevent Rajputana from again becoming the field for seditious conspiracy.

3. Your Highness will remember that His Excellency the late Lord Minto addressed a letter to you on the 6th August, 1910 on the subject of keeping native States free from seditious evil of sedition and it was abundantly clear from Your Highness's reply that Your Highness was not less anxious than the Government of India to organise affectual measures to that end, and to co-operate in every way with the Government of India to secure that object. It is still as it was than the earnest desire of the Government of India, that the Chiefs themselves should take the necessary steps for rooting out the evil of sedition but it is clear from the brief pieces of the situation given in the preceding paragraph that the efforts which have been made to this end have not yet been attended with complete success. It is obvious from the recent discoveries that machinery for watching and reporting the movements of conspirators in some of the more Important States of Rajputana is wholly defective and that in some cases institutions which have professed to be on a purely educational basis have been used for political purposes.

4. The points, therefore, which still seem to require attention at the hands of Darbars in Rajputana are (1) the adoption of adequate measures for the improvement of their police especially of their system of police intelligence and (2) a closer control over their Schools and Colleges.

I bring these two subjects to Your Highness's attention in the full confidence that they will receive prompt consideration from the Jaipur Darbar and I need only add that if Your Highness

as a result of your deliberations on the subject, should require any advice or assistance from me or from the Resident, it will be very readily and gladly given.

The Government General in Council is confident that the Darbars of Rajputana with their traditional loyalty. will make every effort to discharge the duty which they owe both to themselves and to the Empire of rooting out the evil of sedition, before it attains a more serious growth.

I desire to express the high consideration which I entertain for Your Highness and to subscribe myself.

Your Highness's *sincere friend,*

Sd/—
(Sir. Elliot Colvin)
K. C. S. C. I.

Major General His Highness Maharaja Dhiraj
Sir Sawai Madho Singh Bahadur, Jaipur.

हस्तलिपि व चित्र

PRISONER'S LETTER

[illegible]

बारहठजी द्वारा जामाता को लिखा पत्र

ॐ

श्रीमती सौभाग्यवती चिरंजीवि बाई चन्द्रमणि
प्रसन्न रहो।

तुम्हारा पत्र मिला, पढ़कर परम संतोष हुआ।
मेरे संबंध में तुम लोग चिन्ताकातर न [illegible]
[illegible] धर्मपर ही मनन करो भारत में जन्म लेने के
साथ ही जो कर्तव्य प्रत्येक मानवजीवन के साथ
[illegible] प्राप्त होते हैं जो अपने प्रत्येक देशबां-
धव पर - चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री, सब पर रहता है
उसी कर्तव्य को पूर्ण करोगे उसी [illegible] मुक्त होने
में ही हमारा कल्याण है। मेरे ईश्वर को मेरे ही
लिये छोड़ दो, यह [illegible] का [illegible]
[illegible]
आंतरिक बल पर निर्भर है और उस अंतर में
[illegible] जगन्माता है। चाहे
[illegible] जीवन के रहस्य को न [illegible] नश्वर [illegible]
को न जानने वाले हमारे कुटुंब पर [illegible] है।

सन् 1914-15 में आजन्म कारावास के बाद पुत्री चन्द्रमणी को
लिखा प्रेरक पत्र (पृष्ठ 1)

विपरीत परंपरा को देखकर नाना प्रकार के क्लेशों
देते हुए बिना किंचित की टीका टिप्पणी में जो मौ
जों होने और न मालूम तुम्हारे कानों तक
भी पहुंचते होंगे परंतु तुम्हारे धैर्य और [illegible]
भावों पर मुझे संतोष है, तुम अवश्य यह मान
कर संतुष्ट होओगी कि भारत के एक महत्वपूर्ण
प्रदेश में जागृति होने का प्रारंभ अपने कुटुंब की
महान् आहुती से ही हुआ है इस राजपूताने
में हमलोगों की बलि मंगलस्वरूप है। नौ
[illegible] भाईयों की तुच्छता और इस महाभार
त अनुष्ठान की महत्ता मिलाकर देखने से
ही यह स्पष्ट प्रतीत होगा। बाहर के आदमी
[illegible] को कुछ [illegible] चाहता हूँ। यह
समाज बड़ी [illegible] है, विश्वास किसी
पर न करें [illegible] अवश्य होगा।
तुम्हारे पत्र मुझे मिल जाते हैं, स्वतंत्र पत्र
[illegible] हो। मेरे [illegible] ईश्वर की [illegible]।

पुत्री चन्द्रमणी को लिखा पत्र (पृष्ठ 2)

आश्रम साबरमती
शनिवार

भाई केसरीसिंहजी,

आपका खत माघ कृ. ५ का मैंने मेरी पास रख छोड़ा। ऐसी इच्छा से कि मैं कुछ न कुछ "यंग इंडिया" में लिखूं। अब सोचता हू कि लिखने से कुछ लाभ नही है। किसी ने ऐसा माना ही न था कि सब प्रतिनिधि सेठी जी के वश मे है और दोषित है।

(दि. 6-3-1925 ई)

आपका
मोहनदास

[illegible]

भाई [illegible]

आपका [illegible]
मैंने मेरी [illegible]
[illegible]
में [illegible]। अब सोचता हूं कि लिख-
ना [illegible] नहीं है। [illegible]
[illegible]
[illegible]
और [illegible] है।

आपका
मोहनदास

राष्ट्रपिता महात्मा गाधी का पत्र





माणिक भव
को

राजपूत जाति पर मरसिया

दोहा.

जो शान प्रथम उठावते, होत हृदय पर घात ।
नहीं दशा जाएग-हिये, हा! राजपूती जात ॥

स्मृति

कवित्त

वीर-रस वाके न्याय नीति की ध्वजा के दण्ड ;
बाहरू निशा के बाँके, बिना दुविधा के थे ।
रक्षक प्रजा के, सिरमोर थे इला के सदा ;
दुश्मन दगा के प्यासे सुयश-सुधा के थे ।
खिले रटा के जैसे मोहिनी-घटा के बीच ;
धुनती सटा के सिंह अद्भुत छटा के थे ।
वीर विपदा के तो निहारो राजपूत वीरो ,
स्मृति को सम्हारो हम वीर वसुधा के थे ॥

नोट. -
(१) पृथ्वी (२) सेना

रैवतसिंह

यदि वह नींद जैसी ही हो
और सती भी गई न न तो
यही कहना होगा

१६

तेज भरी आँखों के पलक-पटों से छिपी ;
निकल उभरने का पथ दिखलाती थी ।
नाक का नगीना, स्वर्ण-कीट-भरी कुन्दन जड़ी,
जाली हुई बंद जैसी दिन दहलाती थी ।
कर्मशक्ति कुण्ठित जो आतुर थी यश हेतु,
देश की पुकार पर तत्पर मचलाती थी ।
हाय वह राजपूती आँखें छिपा के जाती,
छाती दहलाती एक (जिंदा वीर आती थी) ॥

(स्वरचित)

आमिया निरभै दल सजन,
पाणिया बल परराम ।
जिण बल उजल हिन्द री
वा रजपूती आप ॥



हजारीबाग जेल से मुक्ति के बाद
ठाकुर केसरीसिंह बारहठ
(सन् 1920 ई.)



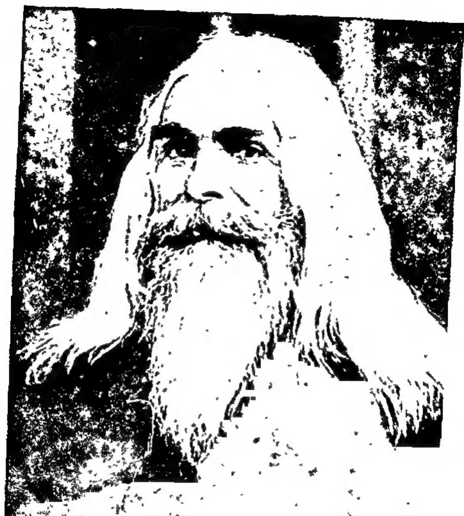
क्रान्तिकारी कुंवर केसरीसिंह बारहठ युवावस्था में



देशभक्त ठाकुर केसरीसिंहजी बारहठ, कोटा
(सन् 1931 ई.)



अमर शहीद [redacted]. प्रताप की मातेश्वरी माणिक कुंवर



स्व० केसरीसिंह बारहठ